अप्रैल - जून २००५

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

डॉ. निरुपमा राय
पवन शर्मा
जीवितराम सेतपाल
डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी 'शलभ'
मनोज सिन्हा
विमल पांडेय

१५ रुपये

सागर-सीपी
प्रमोद कुमार तिवारी

आमने-सामने
मदन मोहन उपेंद्र

CERTIFIED
EXPLOSIMETERS
& OXYMETERS
at a new LOW price!!
Rs. 12,500*
UNIPHOS
00
UNIPHOS - 399
FLAMMABLE GAS MONITOR
UNITED PHOSPHORUS LIMITED
Features
• Instantaneous concentration display on LCD
• CMRI & CCE Certified
• Audible & visual alarms
• Compact & Light Weight
Your complete source for gas detection products
Heavy Duty LPG/PNG Monitoring System
Domestic LPG/ PNG Detectors
Gas transmitters
Multichannel Controllers
Short Term Detector Tubes
*Conditions Apply. Ex-factory price. Taxes & duties extra. The instrument is supplied along with calibration certificate. This promotional offer also includes one free calibration at our R&D centre.
Our research centre is a DSIR (Department of Science & Industrial Research) recognized laboratory.
CMRI: Central Mining & Research Institute - Dhanbad, CCE: Chief Controller of Explosives - Nagpur.
Creative Concepts
UNITED PHOSPHORUS LIMITED
Ready Money Terrace, 167 Dr. Annie Besant Road, Worli, Mumbai 400 018. Tel: +91-22-2495 4628 / 2493 0681
Fax: +91-22-2497 8119 / 2493 8826 Email: gasdetection@uniphos.com. Visit us at www.chemo-electronic.com

अप्रैल – जून २००५
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
देवमणि पांडेय
जय प्रकाश त्रिपाठी

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●
आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.
वार्षिक : ५० रु.
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
विदेश में (समुद्री डाक से)
वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड
*कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमान्ड ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर द्वारा केवल '**कथाबिंब**' के नाम ही भेजें.*

● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●
ए-१० 'बसेरा,'
ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८
फोन : २५५१५५४१
e-mail : kathabimb@yahoo.com

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक
अरुण सक्सेना
फोन : २३६८ ३७७५

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

|| ५ || ताले वाली डायरी / **डॉ. निरुपमा राय**
|| ९ || चेहरे / **पवन शर्मा**
|| १४ || आतंकवादी / **जीवतराम सेतपाल**
|| १८ || बिके हुए हाथ / **डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी 'शलभ'**
|| २२ || मौत की छलांग / **मनोज सिन्हा**
|| २८ || स्वेटर / **विमल पांडेय**

लघुकथाएं

|| ८ || भाई / **विजय**
|| ३७ || सही तरीका, अंतर / **युगेश शर्मा**
|| ४८ || इंसाफ / **विजय**
|| ४८ || अस्वीकार / **कालीचरण प्रेमी**

कविताएं / गीत / ग़ज़लें

|| २७ || ग़ज़लें / **केशव शरण, साहिल**
|| ३१ || शब्द जहां लौट आते हैं अनंत से... / **राहुल झा**
|| ३४ || ग़ज़लें / **मदन मोहन 'उपेंद्र'**
|| ४६ || कौन / **प्रेम प्रकाश चौबे 'प्रेम'**
|| ४६ || चोंच भर कविताएं / **हृदयेश भारद्वाज**
|| ४७ || दृष्टिपटल / **रीता राम**
|| ४७ || दोहे / **उदयशंकर सिंह 'उदय'**
|| ४७ || ग़ज़ल / **डॉ. नसीम अख़्तर**

स्तंभ

|| २ || लेटरबॉक्स
|| ४ || 'कुछ कही, कुछ अनकही'
|| ३२ || आमने-सामने / **मदन मोहन 'उपेंद्र'**
|| ३५ || सागर-सीपी / **प्रमोद कुमार तिवारी**
|| ३८ || वातायन / **हृदयेश भारद्वाज**
|| ३९ || पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण फोटो : *नमित सक्सेना*

लेटर बॉक्स

'कथाबिंब' अपने पच्चीस वर्ष पूरे कर चुकी है, यह वास्तव में एक बड़ी उपलब्धि है. यह उपलब्धि पत्रिका की ही नहीं, अपितु साहित्यिक जगत की भी है, क्योंकि पाठकवृंद को निरंतर जिन स्तरीय रचनाओं से सराबोर किया जा रहा है, परोसा जा रहा है, अपने आप में एक अनूठी मिसाल है. वास्तव में कुछ ही श्रेष्ठ कोटि की साहित्यिक पत्रिकाएं हैं जो लंबा सफ़र तय करने के बावजूद थकती नहीं हैं, अपनी जीवंतता बराबर बनाये रखते हुए और भी ज़्यादा बुलंदियों को छूने में प्रयासरत रहती हैं, उनके पीछे संपादक की सूझ-बूझ, लग्न, परिश्रम तथा संयोजन-कौशल ही रहता है. जनवरी-मार्च '०५ के अंक में सिद्धेश की कहानी 'भारत पूअर सोसायटी' भारत में पनप रही ग़रीबी की एक तस्वीर प्रस्तुत करती है. पूर्ण शर्मा 'पूरण' ने अपनी कहानी 'कुछ तो बाक़ी है' में यह दिखाने का सफल प्रयास किया है कि प्रेम-प्यार से रह रहे हिंदु-मुस्लिम सौहार्द को एक छोटी सी घटना किस प्रकार लील लेती है, और पूरी की पूरी बस्ती उपद्रवों के भयंकर तांडव में तब्दील हो जाती है. उषा राजे सक्सेना की 'एलोरा' कहानी आधुनिक पीढ़ी की किशोर बेटी एलोरा तथा उसके पिता देवेन बोस के संवाद पर आधारित है. वह अपनी सहेली से हुए पशुवत, घृणित और निंदनीय दृश्य को देखकर, इस नग्न सत्य को पुलिस को बताने के लिए अधीर है. उधर उसके पिता भीरु, नम्र और शांतिप्रिय हैं. वह अपनी बेटी का पुरज़ोर विरोध करते हैं. कहानी अच्छी बन पड़ी है, मन को छूती है. सलाम बिन 'रज़ाक' ने 'कोहरा' में मुस्लिम समाज में औरत की दुखद त्रासदी को बख़ूबी उभारा है. तारिक अस्लम 'तस्नीम' की कहानी बिहार के हालात का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करती हुई वोट, राजनीतिक सत्ता और भ्रष्टाचार के इर्द-गिर्द घूमती है. लघुकथाओं में 'एंटोन चेखव' की 'एकदम दादा जी जैसा' तथा 'रक्त दाता' प्रभावित करती हैं. सागर-सीपी के अंतर्गत वयोवृद्ध साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र के बारे में उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता, सृजनात्मक बिंदुओं और अनुभूतियों से पाठकवृंद से साक्षात्कार करवाया है, यह निश्चय ही प्रशंसनीय है. 'कुछ कही, कुछ अनकही' हर बार की तरह संपादन की वैचारिक समृद्धता को व्यक्त करती है. 'वातायन' में डॉ. अरविंद ने अपनी विदेश यात्रा के अविस्मरणीय, मधुरतम क्षणों को 'और नदी बहती रही में' रोचक ढंग से संजोया है. पत्रिका अपने गेटअप तथा मुद्रण की गुणवत्ता को भी बराबर बनाये हुए है.

डॉ. सुरेंद्र गुप्त
आर.एन.-७, महेशनगर, अंबाला छावनी-१३३००१

'कथाबिंब' का जन.-मार्च ०५ अंक प्राप्त हुआ. अधिकांश बड़े मनोयोग से पढ़ गया हूं, या यों कहिए कि संकलित सामग्री कुछ इतनी मनोज्ञ और मर्मस्पर्शी थी कि मुझे 'कथाबिंब' आद्योपांत पढ़ने के लिए बाध्य होना पड़ा. प्राय: सभी कहानियां समकालीन संदर्भों से जुड़ी हुई तथा यथार्थबोध से अनुप्राणित हैं. लघुकथाएं भी सार्थक और चोटदार हैं. सुधीर कुशवाह, छंदराज व अनिरुद्ध सिन्हा की ग़ज़लें प्रभावी रहीं. सुश्री मधु प्रसाद का नवगीत कलात्मक है. सागर-सीपी स्तंभ के अंतर्गत मित्रवर डॉ. सूर्यदीन यादव द्वारा गुरुवर डॉ. रामदरश मिश्र का सार्थक साक्षात्कार पढ़कर वर्षों पुरानी स्मृतियां जैसे मन में करवटें बदलने लगीं. तमाम प्रश्नों, किंवा जिज्ञासाओं के डॉ. मिश्र द्वारा दिये गये उत्तरों में उनका सौजन्य एवं सौहार्द बिंबित हो रहा है. इस अंक में 'आमने-सामने' स्तंभ के अंतर्गत प्रसिद्ध कहानीकार श्री सलाम बिन 'रज़ाक' का समूचा आत्मकथ्य और उनकी रचनाधर्मिता बड़ी प्रेरक एवं आह्लादक है. 'वातायन' स्तंभ के अंतर्गत 'कथाबिंब' के प्रधान संपादक डॉ. अरविंद का यात्रा वृतांत भी अत्यंत सजीव और ज्ञानवर्धक है. अमेरिका की ओलेंगेंगी नदी पर बने पुल पर खड़ा लेखक अपने देश भारत की पुण्यसलिल भागीरथी को स्मृतियों में खोजता है. विश्व के सिरमौर सरीखे अमेरिका से भारत और उसकी संस्कृति-प्रकृति किसी भी प्रकार से कम नहीं है - यह भाव पाठक के हृदय में भी जगाने में लेखक पूर्णत: सफल हुआ है. लेखक निस्संदेह बधाई के पात्र हैं.

आकर्षक आवरण, सुंदर काग़ज़ पर सुंदर एवं निर्दोष मुद्रण एवं आवश्यक छायाचित्रों के संयोजन से 'कथाबिंब' नयनाभिराम भी है. निश्चय ही 'कथाबिंब' देश की प्रथम पंक्ति की पत्रिका है- इसमें दो राय नहीं हो सकतीं.

प्रो. भगवानदास जैन
बी-१०५, मंगलतीर्थ पार्क, कैनाल के पास, जशोदानगर रोड, मणीनगर (पूर्व), अहमदाबाद - ३८२४४५

पत्रिका 'कथाबिंब' (जनवरी-मार्च '०५) मिली. सलाम बिन रज़ाक का आमने सामने में 'कहानी लिखना भी असल में अपने अंदर फंसे किसी ख़्याल की चुभन से मुक्ति पाने की क्रिया है', वाक्य पसंद आया. लोग शायर का कलाम सुनते हैं और दाद सिंगर को देते हैं, नयी नस्ल पर भरपूर तंज़ है. श्री रामदरश मिश्र जी की सागर/सीपी में रचना के विषय में 'ऐसी दुनिया रचते हैं जो हमारे आसपास की नहीं होती है', एक ऐसी सच्चाई है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता. सुरेश पंडित जी (पुस्तक समीक्षा में), का जो वाक्य पसंद आया वह यह है, 'असली काम हथियार इकट्ठा नहीं, हथियार चलाना है.' अभी अंक पढ़ रहा हूं, कुल मिलाकर पत्रिका में वह सब कुछ है जो एक आदर्श पत्रिका की पहचान है.

शरीफ़ कुरेशी
१/९१, भूसामंडी, फतेहगढ़ (उ. प्र.) २०९६०१.

❀ 'कथाबिंब' का जन.-मार्च '०५ अंक मिला. पूरा अंक पठनीय है. आप हर अंक में देश के राजनीतिक परिदृश्य पर टिप्पणी करते हैं; कभी गुजरात के बारे में लिखें. इस प्रांत के दुर्दिन ख़त्म होने का नाम नहीं ले रहे हैं. कर्मठ, निर्भीक, ईमानदार, कुशल प्रशासक के रूप में शायद प्रदेश को पहली बार मिले मुख्यमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के पीछे कुछ-एक स्वार्थी तत्व हाथ धोकर पड़े हैं. ख़ुशी की बात यह है कि उनके गंदे इरादे पूरे नहीं हो पा रहे हैं. कामना करें कि हों भी न.

कैसी विडंबना है कि प्रखर हिंदुत्ववादी, बल्कि मानवतावादी शब्द अधिक उपयुक्त होगा, श्री आडवाणी जी एवं मोदी जी को विश्वासी हाथों से ही विष दिया जा रहा है, अपनों के ही द्वारा.

गुजरात में, विकास के अभूतपूर्व कार्य श्री नरेंद्र भाई के उच्च दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप हो रहे हैं. हमारी इच्छा है कि आप इस विषय पर धारदार संपादकीय लिखें. कर्नाटक, आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री जहां मुसलमानों को धर्म के आधार पर आरक्षण देकर समाज को विघटित करने का कुत्सित कार्य कर रहे हैं, वहीं नरेंद्र भाई गुजरातियों (मुसलमानों सहित) के विकास एवं संरक्षण का कार्य बड़ी मुस्तैदी एवं कुशलता से कर रहे हैं. तभी तो 'राजीव गांधी फाउन्डेशन' ने गुजरात को 'प्रथम राज्य' एवं टी. वी. टुडे ने श्री मोदी को सर्वश्रेष्ठ मुख्यमंत्री घोषित किया है. आज गुजरात से प्रकाशित होने वाले गुजराती समाचार पत्र 'संदेश' के सर्वेक्षण में गुजरात की ९९ प्रतिशत जनता ने श्री नरेंद्र मोदी को न केवल पसंद ही किया है, वरन उनके विरुद्ध अभियान छेड़ने वाले तथाकथित नेताओं को उनका असली चेहरा भी दिखा दिया है.

जनता ने खुले आम कहा है कि यदि असंतुष्ट नेता अपनी गंदी हरकतों से बाज नहीं आते तो उनके राजनैतिक भविष्य को जनता हमेशा-हमेशा के लिए ख़त्म कर देगी. लिखने के लिए तो बहुत कुछ है लेकिन फिर कभी....

✤ **डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी 'शलभ'**
२१६, उमेदनगर कॉलोनी, भुज-कच्छ, गुजरात-३७०००१.

❀ 'कथाबिंब' के अंक मिलते रहे हैं. आपकी सहृदयता और सदाशयता के लिए आभारी हूं. अक्तू-दिसं. '०४ के संपादकीय ने तो लगभग मुझे झकझोर सा दिया है. ...स्वर्गीय भाई नीतीश्वर शर्मा 'नीरज' की चर्चा कर आपने तो जैसे मेरी दुखती हुई रगों को छेड़ दिया. विगत स्मृतियां फिर जीवंत हो उठीं. स्वर्गीय नीरज भाई साहित्यिक मित्रों में मेरे सबसे अधिक आत्मीय थे. वे आजीवन मुझसे निःस्वार्थ भाव से जुड़े रहे तथा मेरी रचनाओं के उत्कट प्रशंसक बने रहे. 'कथाबिंब' से उन्होंने ही मेरा परिचय कराया था. वे मुजफ़्फ़रपुर के साहित्यिक जीवन की धड़कन में पूरी जीवंतता से शामिल थे. उनकी तीन काव्य कृतियां ('अक्स' ग़ज़ल संकलन; 'अनुभूतियों के दंश,' काव्य-संग्रह तथा 'दंशों को झेलते हुए,' काव्य-संग्रह) हिंदी साहित्य में समाहित हुईं. वे आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री के 'निराला निकेतन' की साहित्यिक वनस्थली के नायाब कुसुम थे. आचार्य शास्त्री द्वारा संपादित साहित्यिक पत्रिका 'बेला' के एक अंक में स्व. नीरज भाई पर मेरा एक लेख छपा था. 'हिंदी ग़ज़ल के अभिनव दुष्यंत का अंत' यही लेख 'समांतर' में भी छपा. इसके अतिरिक्त किसी ने और कहीं कुछ नहीं लिखा. आज लगभग दस वर्षों बाद उनका पुण्य स्मरण कर आपने अपनी सच्ची मित्रता निभायी है. आपका पुनः आभार. यह भी अजब दुःसंयोग था कि 'अनुभूतियों के दंश' और 'दंशों को झेलते हुए' का कवि अंततः सर्पदंश का ही शिकार हुआ. उनका पूरा जीवन जैसे एक अजीब तिलस्म से भरा हुआ था. आपको शायद पता न हो, उनकी तीन पत्नियां थीं. हम लोग चुहलवश उन्हें राजा दशरथ कहा करते थे. तीनों पत्नियों से संतानें हैं जो दुअर हो गयी हैं तथा पत्नियां वैधव्य जीवन का कारुणिक अभिशाप झेल रही हैं. उनका पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं था. उनके चेहरे पर एक अव्यक्त उदासी रहती जिसे वे अपनी कृत्रिम मुस्कुराहट में छिपाये रहते थे. इसी अंक में प्रकाशित 'चक्रव्यूह' कहानी के कहानीकार सैली बलजीत उनके गहरे मित्र थे. वे एक बार नीरज भाई के गांव भी आये थे. ढेर सी स्मृतियां हैं.... इतनी कि शायद एक किताब बन जाये. एक कारुणिक दृश्य अब तक विगलित कर जाता है. नीतीश्वर भाई का निर्जीव पार्थिव शरीर पड़ा था. दाह संस्कार की तैयारी हो रही थी. लेकिन एक दृश्य से लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे. नीरज भाई की छोटी पत्नी उनसे इस कदर लिपटी हुई थी कि लाख छुड़ाने पर वह विलग नहीं हो रही थी. उसका कहना था कि सांप का काटा हुआ ठीक हो जाता है. किसी ओझा गुणी को बुलाओ, कौड़ी हंकवाओ देखो, कैसे मुस्कुरा रहे हैं. ये अभी बिल्कुल ज़िंदा हैं. ज़बरन हटाया गया उन्हें जैसे किसी वृक्ष की छाल को ज़बरन छीलकर अलग किया जा रहा हो! ख़ैर, यह समय भी कैसा निर्मम है कि हर घाव को भर देता है. आपको भी आज व्यर्थ इतनी बातें लिखकर संवेदित कर दिया.

✤ **उदयशंकर सिंह 'उदय'**
गीतांबरा सहबाजपुर (निकट दुर्गा स्थान), पो. भीखनपुर कोठी
मुजफ़्फ़रपुर (बिहार)-८४२००४.

(कुछ और प्रतिक्रियाओं के लिए कृपया पृष्ठ ४९ देखें)

कुछ कही, कुछ अनकही

इस अंक में छः कहानियां जा रही हैं. इनमें से चार के कहानीकार 'कथाबिंब' के पाठकों के लिए सर्वथा नये नाम हैं. इससे कुछ लोगों का यह आरोप कि 'कथाबिंब' के अपने कुछ बंधे-बंधाये लेखक हैं बेमानी हो जाता है. जहां तक संभव होता है एक ही रचनाकार को पत्रिका में ज़ल्दी 'रिपीट' नहीं किया जाता. अगर इसे आत्मश्लाघा न समझा जाये तो यह बड़े ही संतोष की बात है कि 'कथाबिंब' में छपने के बाद प्रत्येक रचनाकार फिर-फिर हमें अपना लेखकीय सहयोग देना चाहता है. वैसे देखा जाये तो इसका मुख्य श्रेय 'कथाबिंब' के पाठकों को जाता है. कहानी प्रकाशित होने के बाद अनेक कथाकारों ने हमें कई मर्तबे ख़त लिखकर जताया कि पाठकों की जितनी प्रतिक्रियाएं 'कथाबिंब' में कहानी छप कर मिलीं उतनी पहले कभी नहीं मिलीं.

●

इस अंक की पहली कहानी की लेखिका हैं डॉ. निरुपमा राय. 'ताले वाली डायरी' एक ऐसी युवा लड़की की कहानी है जिसके परिवार को अचानक पता चलता है कि लड़की मधुमेह रोग से भयंकर रूप से ग्रसित है. फिर तो जैसे पूरी दुनिया ही बदल जाती है. पवन शर्मा की कहानी 'चेहरे' सपाट बयानी की कहानी है - सिपाही मिश्रा ऊपर से कुछ और है और अंदर से कुछ और. जिस दौर से हम गुज़र रहे हैं उसमें ज़रा से शक की बिना पर कभी भी किसी सीधे-सादे आदमी को 'आतंकवादी' करार कर दिया जाना संभव है ('आतंकवादी', जीवतराम सेतपाल). रोहितश्याम की कहानी 'बिके हुए हाथ' उन मुसलमानों की कहानी है जो हिंदुस्तान छोड़कर पाकिस्तान चले तो गये थे लेकिन उनकी पहचान आज भी 'हिंदुस्तानी' के रूप में ही है. उन्हें मुहाज़िर कहा जाता है और बराबर का दर्ज़ा नहीं दिया जाता. अगली कहानी एक भारतीय मुसलमान युवा की कहानी है जिसके बाबा और अब्बा परिवार पालने के लिए रोज़ मौत की छलांग लगाते थे ताकि अगली पीढ़ी का भविष्य सुधर जाये. किंतु परिस्थितियों में कोई बदलाव नहीं आया. आज आख़िर शाहिद भी एक तमाशागार बन गया ('मौत की छलांग', मनोज सिन्हा). विमल पांडेय की कहानी 'स्वेटर' का अनुज विदेश यात्रा के लिए एअरपोर्ट के लिए निकलता है. घर से चलते समय वृद्ध मां-बाप बहुत सारी हिदायतें देते हैं, और साथ ले जाने के लिए एक स्वेटर भी देते हैं. जिसे वह अपने साथ नहीं ले जाना चाहता.

●

पूरे विश्व में, पिछले पांच-छः सालों में, देखा जाये तो कुछ ऐसी घटनाओं का दौर चलता रहा है जिन्होंने दुनिया का नक़्शा ही बदल कर रख दिया है. इनमें से कुछ घटनाएं नैसर्गिक आपदाओं के रूप में आयीं - तीन वर्ष पूर्व २६ जनवरी को भुज-कच्छ क्षेत्र में आया भूकंप, पिछले वर्ष २६ दिसंबर को समुद्र के रास्ते सुनामी लहरों का क़हर, अभी हाल में भारी वर्षा के कारण गुजरात में अप्रत्याशित बाढ़, २६ जुलाई को मुंबई में बादल फटने के कारण चार घंटों में ९४४ मिलीमीटर बरसात से संपूर्ण यातायात ठप्प (ज़्यादातर दुर्घटनाएं २६ तारीख़ ही को क्यों ?) - बाढ़ जैसी स्थिति से एक बड़ा इलाका प्रभावित, अमरीका के न्यू ओरलिएन्स क्षेत्र में समुद्री तूफान कैटरीना से जान और माल का भारी नुकसान और अभी थोड़े दिन पहले जम्मू-कश्मीर और 'आज़ाद कश्मीर' में भूकंप से फिर तबाही. २६ जुलाई के बाद मुंबई वासियों का तो यह हाल था कि बाद के दिनों में जब भी थोड़ी तेज़ बारिश होती तो लोग घर से बाहर जाने से घबराने लगते. कहीं ऐसा तो नहीं कि फिरसे ...! बहरहाल ये सब प्राकृतिक आपदाएं थीं जिन पर मानव का कोई नियंत्रण नहीं. लेकिन आदमी भी पीछे नहीं रहा है. गलत इरादों को पूरा करने में अपनी शक्ति का उसने भी दुरुपयोग किया है. चाहे करगिल में घुसपैठ हो, 'डब्लू टी सी' की दोनों टॉवर्स पर हमला हो और बदले में अफ़गानिस्तान पर बमबारी, ईराक में महा विनाशक अस्त्रों को ढूंढ़ने के बहाने सद्दाम हुसैन को ज़बर्दस्ती अपदस्त करना और हज़ारों का नरसंहार.

सभ्यता के सोपान पर आगे बढ़ने के लिए निर्मम, बर्बर और पाशविक होना आवश्यक नहीं है. मानवाधिकारों का जितना हनन अमरीका करता रहा है उतना किसी अन्य राष्ट्र ने कभी भी नहीं किया. यह दिखाने के लिए कि अमरीका पूरे विश्व का सिरमौर है अगर कुछ हज़ार जानें जाती हैं तो क्या फ़र्क पड़ता है. संयुक्त राष्ट्र संघ आज अमरीका के हाथों की कठपुतली बन कर रह गया है. उसके होने न होने का कोई अर्थ नहीं है.

इसके अलावा, अपने देश में कभी आतंकवादी, आत्मघाती, उग्रवादी, नक्सलवादी हमलों से भी लोग मरते रहते हैं - ट्रेन और सड़क दुर्घटनाओं में भी मरने वालों की संख्या कम नहीं है. सवाल यह उठता है कि प्राकृतिक आपदाओं और प्रकोपों से तो बच पाना संभव नहीं है किंतु क्या कोई ऐसा मैकेनिज्म है जिससे मानव निर्मित दुर्घटनाओं को न्यूनतम रखा जा सके ! दुर्घटनाएं होती हैं, जांचें होती हैं, कुछ लोग निलंबित होते हैं, स्थानांतरित कर दिये जाते हैं या नौकरी से भी निकाल दिये जाते हैं लेकिन ऐसा फिरसे न हो इस संबंध में कोई निश्चित या ठोस कार्यवाही नहीं होती.

(कृपया शेष भाग पृष्ठ ५२ पर देखें)

कहानी

ताले वाली डायरी

* डॉ. निरुपमा राय *

प्यारी प्रभा दी !

महीनों बाद तुम्हें पत्र लिख रही हूं. स्वस्थ प्रसन्न हूं...यह तो लिख ही नहीं सकती. हां प्रसन्न रहने के अनथक प्रयास में जुटी रहती हूं. तुम्हारे पास से आये छह महीने हो गये हैं. पर इन छह महीनों में एक युग काटा है मैंने. एक असामान्य... दर्दनाक और असह्य ढर्रे पर ज़िंदगी धीमी गति से सरक रही है. कभी जीवन को उपवन समझकर, उम्मीदों और सपनों को रंगीन तितलियां मानने वाली मैं स्वयं को बियावान में खड़ी पाती हूं. वक़्त की तेज़ रफ़्तार से घबराने लगी हूं...पल-पल पहाड़ सा जो कटता है. हर क्षण दुविधा और भय की तलवार सर पर लटकती महसूस होती है. कल क्या होगा ? यह प्रश्न हर रोज़ मेरी आत्मा में कील सा उतरता है. दी....अगर गर्मी की छुट्टियों में तुम्हारे घर नहीं आती तो शायद इस सच से तब रूबरू होती, जब सब कुछ रेत की तरह मेरी मुट्ठी से फिसल गया होता.

कैसे भूल सकती हूं वो पल...जब दरवाज़ा खोलते ही तुमने चौंक कर पूछा था, "दीपा, सोनू का स्वास्थ्य इतना ख़राब क्यों है...? ये तो हड्डियों का ढांचा हो गयी है."

"कुछ नहीं दी, लंबी हो रही है न इसलिए दुबली दिखती है." मेरी बात सुनकर तुम मौन तो रह गयी थीं, पर चिंता के गहरे आवरण ने तुम्हारे चेहरे को ढंक लिया था. तुम्हारी चिंता कितनी स्वाभाविक थी, इसका पता हम सबको तब चला, जब तुम्हारी ज़िद पर सोनू की पूरी जांच करवाई गयी. एक अप्रत्याशित सच सामने आया... सोनू डायबिटिक है. बस उसी पल से हमारी हंसती-खेलती ज़िंदगी का रूख़ ही मुड़ गया. गुड़िया सी, जीवन से भरपूर सोनू मूक तस्वीर सी हो गयी.

याद है न दी, डॉ. माथुर भी सोनू की रिपोर्ट देखकर सकते में आ गये थे. सोनू के रक्त में शर्करा की मात्रा १०० मिली लिटर में ४०० मिली ग्राम थी. ... यानि सर्वाधिक शुगर लेवल को स्पर्श करती... "ओ माई गॉड !" यह बच्ची तो कभी भी कोलेप्स कर सकती थी... आपने इतनी देर क्यों कर दी ?" डॉ. माथुर ने पूछा तो मैं मानो मूक-बधिर सी अवाक खड़ी रह गयी थी...बिलख-बिलख कर रो पड़ी थी. सोनू को सीने से सटाये मेरे कंधे पर हाथ रखकर खड़ी तुम उस वक़्त मुझे बहुत बड़े संबल की तरह लगी थीं, दी... आज भी तुम मेरे लिए बहुत बड़ा सहारा हो.

कहां बारह वर्ष की परियों जैसी सुंदर सोनू और कहां जीवन भर यंत्रणा की सूली पर चढ़ा देने वाला यह राजरोग ? हम दोनों बहनों के मन में उस वक़्त जो सन्नाटा पसरा था न, वो आज भी मेरे हृदय पर क़ाबिज़ है दी...

तुमसे फोन पर तो बात करती ही रहती हूं... पर मन की पीड़ा का भार उतरता ही नहीं. कहते हैं मनोगत व्यथा को कागज़ पर शब्दों के रूप में बहा देने से मन हल्का हो उठता है... इसलिए आज वो सब कुछ लिखती जा रही हूं जो पिछले छह महीनों में भोगा है... आगे भी भोगना नियति है... कल क्या होगा मैं नहीं जानती.

यहां आयी तो शहर के सबसे बड़े डॉक्टर को सोनू की रिपोर्ट दिखायी. मेरी सोनू टाइप वन डाइबिटीज की मरीज़ है. इस अवस्था में शरीर में इन्सुलिन बनना बिल्कुल बंद हो जाता है... इसलिए दिन में तीन बार इन्सुलिन की सुई लेना मेरी बिटिया की नियति है.. शुरू शुरू में सप्ताह भर एक कंपाउन्डर सुई देने आता रहा. बाद में यह समस्या उठी कि रोज़ सुई कौन देगा ? महीने दो महीने की बात नहीं ये पूरे जीवन का प्रश्न है... यह मुझसे नहीं हो सकता... मेरा सर्वांग कांप उठा था.

आख़िरकार विनय ही सोनू को सुई लगाने लगे. पेट, बांह या जांघ के मांस में सुई लगाने पर पीड़ा से दोहरी हुई बेटी को देखकर एक बारगी विनय के हाथ भी कांप उठते थे. वो सहज होने की कोशिश करते हुए कहते, "मेरी सोनू बहुत बहादुर है. ये नन्हीं सी सुई मेरी बेटी का क्या बिगाड़ सकती है."

"हां पापा..." सोनू का कंपित स्वर मेरे हृदय पर मानो काशाघात कर जाता.

एक दिन सोनू ने मुझसे पूछा, "मां क्या रोज़ सूखी रोटी... सलाद और हरी सब्ज़ी ही खाना होगा ? मैं टॉफी...बिस्कुट...आइसक्रीम कुछ नहीं खा पाऊंगी ? सोनू बचपन से ही मीठा खाने की शौक़ीन है, तुम तो जानती ही हो." आइसक्रीम तो मेरी जान है .." कहते हुए उसके नन्हें से चेहरे पर शरारत की जो लाली कौंधती थी, उसे क्या कभी भूल पाऊंगी ?

सोनू के प्रश्न ने मुझे दहला दिया था, लाख चाहने पर भी मैं अपने आंसू रोक नहीं पायी थी. मुझे वो पल याद आने लगा ज़ब तुम्हारे यहां से लौटने के बाद मैंने फ्रिज में रखी जैम की शीशी... बार्नवीटा का बड़ा जार, मक्खन का डब्बा और कई तरह की चाकलेटों से भरा डब्बा उठाकर सोनू की नज़र बचाकर बाहर

के कूड़ेदान में डालना चाहा ही था, कि सोनू ने मुझे देख लिया. उस वक़्त सोनू की आंखों में जो भाव कौंधा था, वो बिजली की कड़क बनकर मेरे हृदय पर अ ात कर गया था. उफ़ ! उन निर्दोष भोली आंखों से छलकती पीड़ा को कैसे शब्दों में बांधू ? वो क्षण जीवन भर मुझे एक कसक भरी वेदना के सागर में निमज्ज करता रहेगा दी...

बचपन की निर्दोष हंसी अब यदा-कदा ही उसके अधरों से फूटती है. जैसे वो अचानक समय की परिधि लांघकर बड़ी हो गयी हो. मैं अब किसी भी पार्टी या अन्य समारोहों में जाने से बचती हूं. पर दी, हम आख़िर समाज में रहते हैं... कई बार न चाहने पर भी जाना पड़ता है. कुछ दिन पहले मेरी ननद की बेटी की शादी हुई है. जाना ज़रूरी था...गयी... लेकिन भीड़ और हंगामे से बेख़बर सोनू की सूनी आंखों में मैंने लालसा के कई रूप देखे हैं... महसूस किये हैं दी...खाने पीने में मशगूल हंसते-खिलखिलाते समवयस्क बच्चों को देखती... न जाने किस सोच के दायरे में क़ैद सोनू मुझे पाषाण की उस प्रतिमा की तरह लगी जो बेहद ख़ूबसूरत होते हुए भी स्पंदनरहित होती है.

सोनू के साथ-साथ मैं भी तो विडंबना के उस घेरे में कसी जा चुकी हूं जहां से निकलना नामुमकिन है. उसकी दशा देख मेरा कलेजा फटता है. बात-बात पर ज़िद करने लगी है. पहले तो आइस्क्रीम का लालच देकर मना लेती थी उसे, अब यह सहारा भी जाता रहा. जानती हूं, जीवन में आये इस आकस्मिक और उबाऊ परिवर्तन से वो हतप्रभ है... पर मैं क्या करूं ? लाख जतन करती हूं उसे संभालने का... पर बार-बार टूट कर बिखरती हूं.

एक दिन स्कूल से लौटी तो मायूस सी थी. मैंने पूछा तो फट पड़ी, "मां, सब मुझे सहानुभूति की नज़र से क्यों देखते हैं ? आज कविता कह रही थी, बेचारी सोनिया, इसे तो डायबिटीज है... जैसे मैं कोई अजूबा हूं... क्लास में अच्छा रैंक लायी तो टीचर ने कहा, शाबास सोनिया... बीमार होते हुए भी तुम अव्वल आयी हो. मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता... यह सब मेरे ही साथ क्यों हुआ...? क्यों ?"

वो पांव पटकती फूट-फूटकर रोने लगी, मैं अपने आंसू पीती उसे संभालती, समझाती रही, "बेटा, ये तुम्हारी सोच पर निर्भर करता है कि तुम दूसरे की बातों को किस अर्थ में लेती हो. अगर सकारात्मक सोच रखोगी तो नकारात्मक विचार कभी मन में नहीं पनप सकते. ज़रा उनकी सोचो सोनू, जो विकलांग होते हैं. कोई हाथ-पांव से विहीन होता है तो कोई गूंगा-बहरा...या अंधा. ईश्वर की कृपा से तुम विकलांग तो नहीं... तुम्हारे हाथ-पांव...तुम्हारी आंखें...सोचने समझने की शक्ति सब तुम्हारे वश में है... डायबिटीज हुआ तो क्या हुआ ...? तुममें कोई कमी नहीं है..." मैं कहती रही वो मुझसे लिपटकर रोती रही. मेरी मानसिक व्यथा का अंदाज़ा तुम अच्छी तरह लगा सकती हो दी. किसी को समझाना

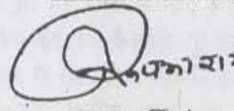

१९६४ पूर्णियां,

एम. ए. (संस्कृत), पी-एच.डी.,नेट

लेखन : *देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कई कहानियां आलेख एवं कविताएं प्रकाशित.*

प्रकाशन : *'और झरना बह निकला' (कहानी-संग्रह), 'विष्णु पुराण में भक्ति तत्त्व' (शोध ग्रंथ), नारी विमर्श पर एक पुस्तक शीघ्र प्रकाश्य, आध्यात्मिक पत्रिका 'वेद अमृत' (पायोनियर बु. कं.) में वेद पुराण, उपनिषदादि से संबंधित कई आलेख प्रकाशित, सांस्कृतिक संस्था 'अभिव्यक्ति' (लखनऊ) तथा प्रकाशित कहानी संकलन 'पत्तियों से छनती धूप' (मनसा पब्लिकेशन) में कहानी - 'अंतर्दाह', आकाशवाणी से कई वार्ताओं का प्रसारण.*

पुरस्कार : *राष्ट्रकवि दिनकर स्मृति समिति पूर्णियां द्वारा सम्मानित, 'दिल्ली प्रेस' पत्र-प्रकाशन समूह द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित कहानी प्रतियोगिताओं (२००१, २००२, २००३) में लगातार कहानियां पुरस्कृत. कहानी "हमकदम" पर उ. प्र. के तत्कालीन राज्यपाल श्री विष्णुकांत शास्त्री द्वारा पुरस्कृत.*

संप्रति : *सदस्या, जिला परिषद, कटिहार.*

या सहज रहने का उपदेश देना बेहद सरल है, तकलीफ़ को भोगने वाला ही सहन करने की कठिनाइयां समझ सकता है.

इस बर्थ डे पर उसके पापा उसके लिए ख़ूबसूरत सी एक डायरी ले आये... चेन से बंद होने वाली डायरी के साथ नन्हा सा ताला भी था. उसे समझाते हुए बोले, "बेटा, इन्सान के जीवन में सब कुछ मन के अनुसार ही नहीं होता. बहुत कुछ न चाहते हुए भी सहना पड़ता है. ऐसे में डायरी के पन्नों में अपना सुख...दुःख...आश्चर्य...या घृणा सब कुछ लिखकर मन को फूल-सा हल्का बनाया जा सकता है. जब कभी तुम्हारा मन किसी भी बात से खिन्न हो... बस झट से डायरी में लिख डालो... देखना कितना अच्छा लगेगा."

"सच पापा...?" सोनू की आंखों में आश्चर्य मिश्रित ख़ुशी की कौंध दिखी तो मैंने चैन की सांस ली.

हर रोज़ तो नहीं पर कभी-कभी जब वह डायरी खोलकर कुछ लिखती नज़र आती मैं भांप लेती ज़रूर कोई बात है. पिता की बात का गहरा असर साफ़ दिखता था.

हर महीने उसकी नियमित जांच होती है. इस महीने की रिपोर्ट आयी तो हमारे पांव तले ज़मीन खिसक गयी. ब्लड यूरिया भी बढ़ा हुआ था. कहीं सोनू की किडनी...? संशय का सर्प मन में कुंडली मार कर बैठ गया था. डाक्टर ने लाख समझाया पर मैं बुरी तरह डर गयी हूं. मीठी चीज़ें दे नहीं सकती... अब नमक पर भी प्रतिबंध ? 'डायट चार्ट' पढ़कर मैं ख़ून के आंसू रोती-रोती हूं... ४० ग्राम आटा... ५० ग्राम चावल... १५ ग्राम दाल... वेट मशीन पर नापते वक़्त मेरे दिल पर जो फफोले उठते हैं उसकी दहक मेरा सारा चैन लील जाती है दी... . एक पल का चैन नहीं... कलेजे पर पत्थर रखकर स्कूल भेजती हूं... दो बार शुगर निल होने के कारण बेहोश हो चुकी है. बच्चे की वेदना मां के कलेजे में कांटे की तरह चुभती है... ये निर्विवाद सत्य है.

जानती हो आज तुम्हें क्यों पत्र लिखा है...? क्योंकि आज मैं बहुत बेचैन हूं... सोनू के स्कूल जाने के बाद मैंने उसकी अल्मारी से डायरी निकालकर पढ़ ली है... कल रात उसके स्कूल बैग के पॉकेट से चुपचाप चाभी निकाल ली थी. क्यों ? मैं पढ़ना चाहती थी... सोनू के मन में क्या चल रहा है. पढ़कर मेरा सर्वांग सिहर उठा... अगर वेदना का असह्य भार बांटा न जाये तो मर्म को छेदनेवाले घातक अंतर्दाह से कौन बच सकता है भला ?

उसने सिर्फ़ पांच पन्नों में जो कुछ लिखा था... जानती हो वो क्या था ? वो कुछ शब्दों में बंधा पीड़ा का ऐसा दस्तावेज़ था जिसने मुझे संज्ञाशून्य बना डाला... उसने लिखा था...

"माई लाइफ इज लाइक ए डेजर्ट... ए बर्डेन फॉर माई मदर..."

"हे भगवान ! अगले जन्म में मुझे बिल्कुल स्वस्थ बनाना... मैं हर चीज़ खा सकूं...आइस्क्रीम...टॉफियां...मिठइयां...और मम्मा के हाथ का बना चाकलेट केक...जो वो मेरे हर बर्थ डे पर बनाती थी... अब कभी नहीं बना पायेगी."

"आज शिल्पा और निधि के साथ टिफिन कर रही थी तो शिल्पा के टिफिन बॉक्स में "सनपापड़ी" देखकर जी चाहा...उठा कर खा लूं... पर चुपचाप अपनी मम्मी का दुःखी चेहरा याद करके सूखी रोटी...सलाद और परबल की सब्ज़ी खाने लगी."

"मुझे तीन-तीन बार सुई लेना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता.. कितना दुखता है... हे भगवान ! ये सब मेरे ही साथ क्यों ? अगर...मैं बड़ी हुई...तो ऐसी दवा ज़रूर खोजूंगी जिससे ये बीमारी न हो, किसी भी बच्चे को सुई न लगानी पड़े."

मैं पढ़ती जा रही थी... रोती जा रही थी. अंतिम पन्ना जिसमें उसने कल की तारीख़ डाली है... पढ़कर मैं पत्थर हो गयी, दी, सारी भावनाएं...स्पंदन...जड़ हो गये....उसने लिखा था.."परसों

रात जब मम्मा प्रभा मौसी से बात कर रही थी.. उस वक़्त मैं सोयी नहीं थी. मैंने सब कुछ सुना... मम्मा ख़ूब रो रही थी...कह रही थी...उसे दूसरा बच्चा नहीं चाहिए...कहीं वो भी मेरी तरह बीमार न हो. शायद मौसी उसे दूसरा बेबी लाने को कह रही थी. मैं भी अपनी मम्मा से कहना चाहती हूं...ले आओ दूसरा बेबी... प्रभा मौसी जैसे मम्मा की बहन है, वैसी ही एक गुड़िया जैसी छोटी बहन मुझे भी तो चाहिए न...अगर मुझे भगवान जी के घर जाना पड़ा...तो मेरी मम्मा की एक बेटी तो रहेगी...मम्मा उसे भी मेरी तरह ख़ूब प्यार करेगी. पर...मम्मा...मैं भी तुमसे बहुत प्यार करती हूं. मैं भगवान के घर जाना नहीं चाहती. पर मैंने बहुत से लोगों के मुंह से सुना है...मेरी लाइफ का कोई ठिकाना नहीं."

मैं बिलख-बिलख कर रोयी दी. फिर आंसू पोंछकर संकल्प लिया...बस अब नहीं रोऊंगी. जीवन का यह मोड़ भले ही दुरूह हो पर असाध्य नहीं है. ताले वाली डायरी के शब्दों ने मेरे हृदय में कील की तरह गड़ी संशयों की अर्गलाओं के बंध भी खोल दिये हैं. मैं जान चुकी हूं. मेरे प्रेम के साथ मेरी हिम्मत की भी आवश्यकता है सोनू को. मेरी दृढ़ इच्छाशक्ति और सेवा के बल पर ही वह जीवन के सुनहरे पल पा सकेगी.

दी ! आज तुम्हारे कहे कुछ शब्द बेतरह याद आ रहे हैं...तुमने आते वक़्त मुझसे कहा था, "दीपा, तुझे हिम्मत नहीं हारनी है. सोनू की ज़िंदगी को एक ख़ुशनुमा अहसास में बदलना है. जीवन केवल जिह्वाऔर स्वाद का मुहताज नहीं...ईश्वर की अनमोल देन है...एक नियामत है, ये भाव तुझे सोनू की आत्मा में गहराई से रोपना होगा. तभी उसके हृदय में जीवन के प्रति प्रेम और दृढ़ इच्छा शक्ति की कोंपल फूटेगी. जो उसके जीवन को पल्लवित और पुष्पित कर देगी."

तुम्हें आश्चर्य होगा आज रात मैंने उसे सुई लगायी, ज़रा भी हाथ नहीं कांपे. विनय भी ख़ुश थे..."चलो अब चैन से कहीं भी जा सकता हूं...कंपाउंडर नहीं खोजना पड़ेगा."

मैं अब सोनू के सामने कभी कमज़ोर नहीं पड़ूंगी. उसे यह समझाने का प्रयास करूंगी कि जीवन में अकस्मात पैदा हुई रिक्तता को कैसे भरा जाता है. मां का दृढ़ चित्त बीमार संतान को बहुत बड़ा संबल देता है, है न दी...? एक मां अपनी संतान की भलाई के लिए अभक्ष्य वस्तु खाने में भी संकोच नहीं करती... क्या मैं अपने आंसू नहीं पी सकती ...?

तुम्हें सब कुछ लिखकर मन फूल-सा हल्का लग रहा है. बगल के बेड पर सोनू निश्चिंत पड़ी सो रही है. रोज़ रात देर तक उसका चेहरा निहारती रहती हूं... अभी भी निहार रही हूं...माफ़ करना दी! लाख रोकने पर भी आंखें भीगती जा रही हैं. पर मैं अपने वादे पर अटल हूं...अब कभी सोनू के सामने नहीं रोऊंगी... "ग्लूकोट्रेंड" मशीन पर ख़ून की जांच करते वक़्त भी नहीं...वेट मशीन पर ५० ग्राम चावल नापते समय भी नहीं...उसे इन्सुलिन की सुई देते वक़्त भी नहीं...उसकी आंखों में कोई अतृप्त लालसा पढ़कर भी नहीं...भविष्य के गर्त में कौन सा अप्रत्याशित सत्य है यह सोचकर भी नहीं...नहीं, अब मैं किसी के सामने नहीं रोऊंगी. पर...अकेले में नहीं रोयी तो मन में कीलित पीड़ा नासूर बन जायेगी. प्रार्थना में बड़ी शक्ति होती है दी... चलो प्रार्थना करें, अब जब भी ताले वाली डायरी को पढ़ूं... उसकी सकारात्मक सोच के नन्हें पल्लव प्रस्फुटित होते दिखें...

तुम्हारी बहन !

दीपा.

द्वारा श्री शंभुनाथ झा, उर्सलाइन कॉन्वेंट रोड, रंगभूमि हाता, पूर्णियां (बिहार) - ८५४३०१

लघुकथा

भाई

विजय

वे दोनों पहली बार जेल में मिले, वह भी जब कैन्टीन में खाना मिल रहा था. खाना बांटने वाले ने किशोरी लाल के कटोरे को दाल से लबालब भर दिया, दस रोटियों के साथ प्याज़ और हरी मिर्चें भी रख दीं. बनवारी की बारी आयी तो एक चम्मच दाल, चार रोटियों के साथ आधा प्याज़ थाली में डाल दिया. सिपाही गर्जा- 'बढ़ आगे.'

बनवारी किशोरी लाल के पास बैठते हुए बोला - 'यह फ़र्क क्यों भाई, जेल में तो सारे मुज़रिम बराबर होते हैं !'

'भाई कहा है इसलिए बता देता हूं. मैं पुराने मंदिरों से मूर्तियां चुराकर तस्करों को बेचता हूं. ये तस्कर कोई और नहीं हमारे शहरों के बड़े-बड़े सेठ होते हैं जो शहर के पुलिस डिपार्टमेंट को ख़ुश रखते हैं, प्रांत व केंद्र के मंत्री उनके दोस्त होते हैं. जिस इलाके के मंदिर में मैं चोरी करता हूं वहां की पुलिस पूरी सतर्कता से मेरी हिफाज़त करती है कि कोई शोर न मचाये और न ही मुझे मारे-पीटे. मुझे चांदी के भाव मूर्तियां बेचनी पड़ती हैं, सोने के भाव पुलिसवालों और नेताओं की जेबें भरी जाती हैं और हीरे से ज़्यादा क़ीमत पर तस्कर विदेशों में मूर्तियों को बेचते हैं. पुलिस का रिकॉर्ड ख़राब न हो इसलिए दो एक चोरियों के बाद मुझे छोटी मोटी चोरी के झूठे इल्जाम में पकड़कर दो चार महीनों के लिए जेल भेज दिया जाता है. जेल स्टाफ को मेरे आराम और खाने पीने के लिए हिदायतें दे दी जाती हैं, किशोरी लाल ने मस्ती से खाते हुए अपनी बात ख़त्म कर पूछा, 'और तुम यहां कैसे आये ?'

मैं गांव के स्कूल का चौकीदार था. एक रात हेडमास्टर का जवान लड़का एक लड़की को लेकर रात में स्कूल में घुस आया. मुझे पकड़ कर एक कमरे में बंद कर दिया. सुबह मैंने कमरा खुलने पर शिकायत की हेडमास्टर साहब से तो उन्होंने कहा, तुम निश्चिंत रहो. आगे ऐसा नहीं होगा. फिर एक सुबह जब स्कूल खुला तो शोर मचा हुआ था. हेडमास्टर साहब के कमरे में रखी तिजोरी खुली हुई थी जिसमें उस दिन मास्टरों को बंटने वाली पगार के रुपये बैंक से लाकर शाम को हेडमास्टर साहब ने रखे थे. पुलिस आयी, कमरे से निशान उठाये गये और खोये हुए रुपये मेरी कोठरी से प्राप्त हो गये. वहां कैसे पहुंचे मुझे पता नहीं ! अदालत में मेरी सुनी ही नहीं गयी और पांच साल की सज़ा सुना दी गयी.'

किशोरी लाल हंसा, 'बनवारी भाई. चोर, डाकू या बलात्कारियों की शिकायत करोगे तो नौकरी भी छूटेगी और जेल में लंबे वक़्त तक रहना होगा. अगर जेल में भी चोर डाकुओं से दोस्ती करोगे तो ऐश करोगे,' कहते हुए अपने कटोरे से दाल और थाली से उठाकर चार रोटियां बनवारी की थाली में डालते हुए बोला, 'मेरे भाई हो. आगे जेल में तुम्हें भी कोई परेशानी नहीं होगी. मैं जेलर से बोल दूंगा.'

बी-१०६, ए. टी. एस ग्रीन्स-१, सेक्टर-५०, नोएडा-२०१ ३०७.

कहानी

चेहरे

वह ट्रेन से जिस स्टेशन पर उतरी, वह एक छोटा सा क़स्बा है. लगभग चार-पांच हज़ार लोगों का कस्बा. इस क़स्बे में एक पोस्ट ऑफिस है. एक हायर सेकंडरी स्कूल है. एक पुलिस थाना है. एक एस. टी. डी. बूथ है और अन्य छोटी-छोटी दुकानें भी हैं. ट्रेन के आने-जाने के समय या बस के आने-जाने के समय पर ही इस क़स्बे में कुछ हलचल होती है, बाक़ी समय में यह कस्बा सुनसान रहता है, क्योंकि ट्रेन से उतरने-चढ़ने वाले अधिकतर लोग इस क़स्बे से लगभग दस-पंद्रह किलोमीटर के दायरे के गांवों के होते हैं.

स्टेशन पर उसे एक लड़का मिल गया. वह भी गांव का ही था. लड़के ने उसकी अटैची और बैग बस स्टॉप तक पहुंचा दिया. स्टेशन से बस स्टॉप लगभग आधा फ़र्लांग पर था. उसने सोचा अच्छा हुआ कि लड़का मिल गया, नहीं तो अटैची और बैग बस स्टॉप तक लाते-लाते उसके हाथ दुख जाते. भले ही उस लड़के ने पांच रुपये लिये. उसने स्टेशन पर देखा था कि उसके जैसे और भी चार-पांच लड़के उतरने वाली सवारियों से सामान को यथास्थान पर पहुंचाने का मोल-भाव कर रहे थे. उसे लगा कि यह उन लड़कों का कमाने का ज़रिया है.

अंधेरा बढ़ गया. उसने घड़ी देखी-साढ़े छः बज रहे हैं. बस स्टॉप पर आकर वह एक चाय के होटल में खड़ी हो गयी. उसने देखा की होटल वाला अपना सामान समेट रहा है. वह काफ़ी देर तक खड़ी रही. होटलवाले ने सामान समेट कर भीतर रख दिया और भट्टी के पास आकर कोयले से बीड़ी सुलगा कर पीने लगा. इस बीच और दो-तीन जने आ कर खड़े हो गये.

"किधर जाओगी बहन जी?" होटल वाले ने पूछा.

"चोरडोंगरी." उसने बताया, फिर उसे होटल वाले पर गुस्सा आया. खड़े-खड़े उसके पैर दुखने लगे हैं. होटल वाले को इतनी भी सभ्यता नहीं कि उसे बैठने के लिए एक कुर्सी ला कर दे दे. एकाएक उसे हंसी आयी और मन ही मन अपने आप से बोली, "मैडम जी, ये देहात है. कोई अपना शहर नहीं कि आदमी ज़रा-ज़रा-सी बात ध्यान में रखे !"

"क्यों ?" होटल वाले ने बीड़ी का सुट्टा लगाया.

"क्यों क्या ?" वह अचकचा गयी.

"मेरा मतलब कि आप चोरडोंगरी क्यों जा रही हैं ?"

"प्राइमरी स्कूल में पोस्टिंग हुई है."

"अच्छा-अच्छा...अब समझ में आया...आप मैडमजी हो." कहकर होटल वाला हंसा, "पर अब जाओगी काहे से ?"

"बस आयेगी... उससे," उसने कहा. चोरडोंगरी तक जाने के लिए उसने पहले से ही कई लोगों से पता लगा लिया था कि कैसे चोरडोंगरी तक पहुंचा जा सकता है ?

"शाम की बस तो निकल गयी." होटल वाले ने बताया.

"निकल गयी !" उसे आश्चर्य हुआ.

"हां... अब तो बस सुबह ही मिलेगी आपको." होटल वाले ने कहा, "आज ट्रेन लेट आयी. नहीं तो बस ट्रेन की सवारी ले कर जाती है."

पवन शर्मा

बहुत बुरी फंसी वह. नयी और अनजान ज़गह में कहां रुकेगी वह ?

होटल वाला साथ खड़े आदमी से बोला, "दौड़ के जा और मैडम जी के लिए एक चाय ले आ मंगल के यहां से. पहले कुर्सी निकाल के ला."

साथ खड़े आदमी ने होटल के भीतर से कुर्सी ला कर उसे दी और मंगल के यहां चाय लेने चला गया.

वह कुर्सी पर बैठ गयी. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे ?

"यहां कोई दूसरा साधन मिल जाता है क्या आने-जाने के लिए ?" उसने होटल वाले से पूछा.

"एक ऑटो वाला है. आज नहीं आया. नहीं तो वह भी ट्रेन की सवारी ले कर जाता है. आसपास के गांवों की सवारी बैठती है उसके ऑटो में."

"क्यों नहीं आया ऑटो वाला ?" उसने पूछा.

"शायद बीमार है. कोई बता रहा था." होटल वाले ने बताया.

चाय लेने गया आदमी चाय ले आया. वह चाय पीने लगी. चाय पीते-पीते उसने सोचा कि ऑटो वाला उसे चोरडोंगरी तक छोड़ आये तो कम-से-कम वह ठिकाने तो पहुंच जायेगी, नहीं तो यहां रात काटनी मुश्किल हो जायेगी. - जो लेगा, ले लेगा.

"मैडम जी, आप कहो तो अशरफ़ को बुलवाऊं. आयेगा तो पेशल में ले जायेगा. पैसे अधिक लगेंगे." होटल वाले ने उससे पूछा.

"कौन अशरफ़ ?"

"ऑटो वाला लड़का."

"आ जायेगा ?"

"क्यों नहीं आयेगा !" होटल वाला हंसा, "मैडम जी, पैसे किसको बुरे लगते हैं ! अब आप ही इतनी दूर से नौकरी करने आयी हो. फ्री में तो नहीं. पैसे के लिए ही तो."

वह कुछ नहीं बोली. पैसे अधिक लगें तो लगें. कम-से-कम वह चोरडोंगरी तो पहुंच जायेगी...उसने फिर सोचा.

"बुलवाऊं अशरफ को ?" होटल वाले ने उसे चुप देख कर फिर पूछा.

"बुलवा लो." कहकर उसने चाय का आख़िरी घूंट भरा और ख़ाली गिलास एक तरफ़ रख दिया.

होटल वाला मुड़ा और जो आदमी चाय ले कर आया था, उससे बोला, "दौड़ के जा और अशरफ़ को ऑटो लेकर मेरे होटल पे आने को कह. कह देना कि पेशल है."

आदमी चल गया.

"यहां से कितनी देर का रास्ता है चोरडोंगरी तक का ?" उसने होटल वाले से पूछा.

"पौनेक घंटे का." होटल वाले ने बताया.

उसने घड़ी देखी. साढ़े सात बज रहे हैं. साढ़े आठ तक चोरडोंगरी पहुंच जायेगी.

अंधेरा गाढ़ा होने लगा.

"मैडम जी, घर से किसी को साथ लेकर आना था." होटल वालां बोला.

"पापा की तबियत ठीक नहीं है. भैया ग्वालियर गये हैं. घर में और कोई नहीं. मम्मी, भाभी और टिंकू." उसने अपनी उंगली चटकाते हुए कहा, "कल ज्वाइनिंग का आख़िरी दिन है, सो अकेले ही निकलना पड़ा. पापा और मम्मी बहुत चिंता कर रहे थे."

"चिंता करने वाली बात ही है. नयी ज़गह में अकेली ज़नानी का निकलना ठीक नहीं है."

अशरफ़ अपना ऑटो ले कर आ गया. होटल वाला बोला, "मैडम जी, आप रेट तय कर लो. जंमे तो जाओ, नहीं तो घर चलो. जो हम खायेंगे, वो आपको खिलायेंगे. सुबह जाना पहली बस से."

"किसको जाना है ?" अशरफ़ ऑटो से उतरकर होटल वाले के पास आता हुआ बोला.

"मैडम जी को." होटल वाले ने उसकी ओर इशारा कर कहा.

"कहां ?" अशरफ़ ने पूछा.

"चोरडोंगरी"

अशरफ़ ने उसकी ओर घूरकर देखा. अशरफ़ को अपनी ओर घूरते देख उसे अच्छा नहीं लगा. फिर वह सोचने लगी...बीस-इक्कीस साल का लड़का है. सांवला है. गांव का है. इससे कैसा

३० जून १९६१

एम. ए. (हिंदी), बी. एस-सी., पी-एच.डी.

लेखन : *देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में अनेक कहानियां, लघुकथाएं तथा कविताएं प्रकाशित. अनेक लघुकथाएं पुरस्कृत, अनूदित तथा संकलित.*

प्रकाशन : *'ये शहर है, साहब !' कहानी-संग्रह प्रकाशित. 'अपने-अपने दायरे' तथा 'जंग लगी कीलें' लघुकथा संग्रह प्रकाशित. 'कथ्यरूप' (अंक २३) के साथ 'किसी भी वारदात के बाद' काव्य पुस्तिका जारी ।*

सम्मान : *'अपने-अपने दायरे' पर 'म. प्र. आंचलिक साहित्यकार परिषद, जबलपुर' द्वारा 'श्री देवेंद्र आदर्श पुरस्कार' तथा 'भारतीय साहित्य संगम, नयी दिल्ली' द्वारा 'सविता पुरस्कार' से सम्मानित; 'जंग लगी कीलें' पर 'करवट कला परिषद', भोपाल द्वारा 'रत्न भारती पुरस्कार' से सम्मानित; लघुकथा लेखन में 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लघुकथा मंच, पटना' द्वारा 'अ. भा. प्रगतिशील लघुकथा मंच' सम्मान प्राप्त.*

संप्रति : *अध्यापन.*

भय ! कुछ ग़लत-सलत करने की चेष्टा करेगा, तो मुक़ाबला कर लेगी.

"बोलो मैडम जी, चलना है कि नहीं ?" अशरफ़ ने पूछा.

"चलना तो है. कितना लोगे ?" उसने रेट पूछा.

"डेढ़ सौ. पिचहत्तर का पेट्रोल जलेगा. पिचहत्तर अपना." अशरफ़ ने साफ़ बात की.

"कुछ कम करो. अधिक है."

"एक रुपया भी कम नहीं. चोरडोंगरी तक पहुंचाने का ज़िम्मा मेरा."

कुछ सोचते हुए वह कुर्सी से उठकर खड़ी हो गयी और बोली, "चलो."

अशरफ़ ने उसका सामान उठा कर ऑटो में रखा और ड्राइविंग सीट पर बैठ गया. वह भी ऑटो में बैठ गयी. अशरफ़ ऑटो स्टार्ट करने से पहले जेब में से बीड़ी का बंडल निकाल कर माचिस की तीली जलाकर बीड़ी सुलगाने लगा तो वह चीख़ी,

"बीड़ी फेंको."

उसके ज़ोर से चीख़ने पर अशरफ़ ने बीड़ी फेंक दी और ऑटो स्टार्ट कर गिअर में डाल कर सड़क पर चलाने लगा.

"तुम इतने छोटे हो और बीड़ी-सिगरेट पीते हो !" उसने अशरफ़ से कहा.

"आदत बन गयी. क्या करूं ?" अशरफ़ अपना ऑटो चलाता हुआ बोला.

थोड़ी दूर चलकर अशरफ़ ने अपना ऑटो रोका. वह चौंक गयी, क्योंकि जिस स्थान पर अशरफ़ ने अपना ऑटो रोका था, वहां एकदम अंधेरा और सुनसान था. उसके कुछ बोलने से पहले ही अशरफ़ बोला, "मोटू को बुला के लाता हूं. साथ में चलेगा."

"मोटू कौन ?" उसके मन में शंका उभरी.

"मेरा दोस्त."

"क्यों ?"

"क्यों क्या मैडम जी. जंगल का रास्ता है. कच्ची सड़क है और ऊपर से मिश्रा अपनी मोटर साइकिल पर घूमता रहता है."

"मिश्रा कौन ?"

"यहीं थाने में सिपाही है. एक नंबर का हरामी." अशरफ़ थोड़ी देर के लिए रुका, "पर आप घबराओ नहीं. मोटू भी मिश्रा से कम नहीं. पूरा पहलवान है." अपनी बात पर हंसता हुआ अशरफ़ सड़क के किनारे बने मकान के पीछे चला गया. उसने देखा कि अंधेरा होने के बावजूद अशरफ़ की चाल में तेज़ी थी. चलते-चलते उसने बीड़ी सुलगा ली. उसे हंसी आयी...अभी थोड़ी देर पहले उसने अशरफ़ से बीड़ी फिंकवा दी थी. अब फिर सुलगा ली ! अशरफ़ जिस तेज़ी से गया था, उसी तेज़ी से वापस लौट आया. उसके पीछे-पीछे एक मोटा लड़का था. वह समझ गयी कि यही मोटू है.

अशरफ़ ने अपना ऑटो स्टार्ट किया. अशरफ़ की बगल में मोटू बैठ गया. ऑटो की हेडलाइट जला कर अशरफ़ ने ऑटो गिअर में डाल कर स्पीड बढ़ा ली. कच्ची सड़क होने के बावजूद भी ऑटो तेज़ी से चल रहा था.

रात में लगभग नौ बजे वह चोरडोंगरी पहुंची. अशरफ़ अपना ऑटो गांव के पटेल के यहां ले गया. पटेल लगभग पचपन साल के थे. गांव के गंवई. पढ़े-लिखे अधिक नहीं. पर उनकी पकड़ आसपास के दस-बारह गांवों पर अच्छी तरह थी. जो कहते, सब वही करते. कई एकड़ खेत थे उनके. आमदनी का मुख्य ज़रिया थी खेती. उनके खेत ख़ूब धन-धान्य उगलते. पटेल कहते - यदि पृथ्वी से हज़ार मीटर ऊपर से देखें तो सतपुड़ा के पहाड़ दिखेंगे, फिर घना जंगल. यदि और आगे नज़र डालें तो कुछ नदियां, तालाब और खेत नज़र आयेंगे, जहां फसलें लहलहाती हैं. यदि और भी आगे नज़र डालें, तब पहाड़, जंगल, नदी, तालाब और खेतों के बीच बसा हमारा छोटा-सा गांव चोरडोंगरी नज़र आता है. आदिवासियों की बस्ती. पटेल आगे कहते हैं - यहां चार साल पहले आसमान से एक हेलिकॉप्टर उतरा था, जिसमें उनके ज़िले के सांसद आये थे. तब शायद चुनाव के दिन थे. सांसद उनसे मिले. चुनाव में उनसे सहयोग मांगा. खाना खाया और चले गये. तब से पटेल की राजनीतिक धाक भी जम गयी.

इस बीच गांव में हलचल मच गयी कि शहर से मास्टरनी आयी है. धीरे-धीरे करके लोग उसे देखने आने लगे. स्कूल के मास्साब भी आ गये. सबसे अधिक खुशी उन्हें हुई. मास्साब ने बताया, "जब से चोरडोंगरी में स्कूल खुला है, तब से अकेला हूं. अब आप आ गयी हैं. मेरा बोझ बंटेगा."

खाना बन गया. उसने पटेल और मास्साब के साथ खाना खाया और सो गयी. थकान की वजह से नींद जल्दी आ गयी उसे.

दूसरे दिन वह स्कूल गयी.

दो कमरों का स्कूल. टूटा-जर्जर. छत पर टूटे हुए कवेलुओं से बारिश में पानी टपकता है. कमरों में पानी भर जाता है. बच्चे ख़ुश होते हैं, क्योंकि उनकी छुट्टी हो जाती है. बिना पल्लों, गली खिड़कियां. दरवाज़ा भी अब गिरा, तब गिरा स्थितिवाला. स्कूल की हालत देख कर वह विस्मित हो गयी.

शाम को अशरफ़ आया. हाल-चाल पूछे और चला गया. उसे लड़का अच्छा लगा. कम-से-कम यहां पूछने तो आया कि उसे कोई तकलीफ़ तो नहीं है ?

पटेल के यहां एक कमरे में उसने अपने रहने की व्यवस्था कर ली. हर शनिवार को वह घर चली जाती और सोमवार को आ जाती. जीवन जैसे एक डोर से बंध गया. तीन वर्ष कैसे बीत गये उसे पता ही नहीं चला. जिस उद्देश्य को लेकर वह घर छोड़ सुदूर गांव में आयी थी, धीरे-धीरे सफल होता दिखा उसे. उसने बच्चों के बौद्धिक स्तर को बढ़ाने के साथ-साथ बच्चों में सुसंस्कार भी डाले. उसने अपने पापा के उन शब्दों को गलत साबित किया, जब वह ज्वाइनिंग के लिए आ रही थी, "विभा गांव में नौकरी नहीं कर पायेगी. देखना, लौट कर वापिस आयेगी."

वह हंस पड़ी थी, पर एक दृढ़ता थी उसके चेहरे पर !

जब वह आ रही थी, तब मम्मी बोलीं, "अब भी सोच ले विभा, मुझे चिंता हो रही है कि तू वहां अकेली कैसे रहेगी ?"

"मुझे जाने दो मम्मी. अब मत रोको मुझे." उसने मम्मी के गले में बांहें डाल कर कहा था.

मम्मी की आंखों में आंसू आ गये थे.

❑

उसने सोचा - अशरफ़ कई दिनों से नहीं आया है. उसे कुछ अजीब-सा लगा. नहीं तो हफ़्ते में एकाध चक्कर तो लगा ही जाता है उसके पास. हफ़्ते भर की बातें बताता है. ख़ुश होता रहता है. पता नहीं कैसा आत्मिक लगाव हो गया है उससे !

अशरफ़ ने उसे बताया था कि उसके अब्बू और अम्मी भोपाल में रहते हैं. अब्बू एक फैक्टरी में काम करते हैं. वह दसवीं

जमात तक पढ़ा है. घर में दो बड़े भाई और हैं. दोनों छोटे-मोटे काम धंधे करते हैं. घर का ख़र्च खींचतान कर चलता है. नवेगांव में उसकी नानी अकेली रहती है, इसलिए अब्बू ने उसे यहीं रख छोड़ा है. नानी की देखभाल होती है. उसे सहारा मिल गया. नानी भी अपने को कभी अकेली महसूस नहीं करती. नानी ने बैंक लोन ले कर अशरफ़ को ऑटो खरीदवा दिया. नवेगांव स्टेशन से उसे जहां की भी सवारी मिल जाती, वहीं निकल जाता. अशरफ़ दिन भर जो कमाता, शाम को नानी के हाथ पर रख देता. नानी अशरफ़ को ढेरों दुआएं देती.

❑

स्टेशन पर अशरफ़ मिल गया. उसने पूछा, "इतने दिनों से कहां था तू ? मिला क्यों नहीं ?"

"परेशानियां ही परेशानियां चल रही हैं मैडम जी. ख़त्म ही नहीं हो रही."

"कैसी परेशानी ?"

"ऑटो थाने में खड़ा करवा लिया है. छुड़ाने के चक्कर में घूम रहा हूं."

"क्यों ?"

"कहते हैं - ओवर लोडिंग थी. काग़ज़ात भी पूरे नहीं थे."

"फिर ?"

"फिर क्या मैडम जी... जुगाड़ कर रहा हूं."

अभी ट्रेन का सिगनल नहीं हुआ.

"आपकी बस तो नहीं आयी अभी...फिर कैसे आ गयीं चोरडोंगरी से ?" अशरफ़ ने पूछा. बिंदरई चौगड्डे से दो की बस पकड़ कर नवेगांव आती है और नवेगांव से ट्रेन पकड़ कर छिंदवाड़ा जाती है.

"मिश्रा जी चोरडोंगरी गये थे. उनकी मोटर साइकिल पर उनके साथ आ गयी." उसने बताया.

"मिश्रा से बच कर रहना मैडम जी. बहुत बदमाश है."

अशरफ़ की बात उसकी समझ में नहीं आयी.

सिगनल हो गया. स्टेशन पर भीड़ बढ़ने लगी. डेली अप-डाउनर आपस में बातें करने लगे. उसने कहा, "मुझे तो मिश्रा जी ऐसे नहीं लगते, जैसा तुम कह रहे हो. तुम्हें ज़रूर कोई ग़लतफ़हमी हुई है. मुझसे जब भी मिलते हैं, बड़े अदब से मिलते हैं."

"मिश्रा को पहचान पाना बहुत कठिन है."

"क्यों ?"

"दो चेहरे हैं उसके. एक चेहरा वो, जो सबको दिखाई देता है, जैसा आपने देखा और दूसरा वो, जो हरेक को दिखाई नहीं देता, जैसा मैंने देखा. उसका दूसरा चेहरा बहुत घिनौना है मैडम जी !" कहते हुए अशरफ़ के चेहरे पर विद्रूपता उभर आयी, "उस की वजह से मेरा ऑटो इस बीच तीन बार थाने में खड़ा हुआ है."

दूर से ट्रेन आती दिखी. वह खड़ी हो गयी, "सोमवार को लौटूंगी, तब बात करूंगी तुझसे."

ट्रेन स्टेशन पर आकर खड़ी हो गयी. वह ट्रेन में चढ़ कर सीट पर बैठ गयी. अशरफ़ की बातें उसके ज़ेहन में कुलबुलाने लगीं - दो चेहरे हैं उसके. एक चेहरा वो, जो सबको दिखाई देता है, जैसा आपने देखा और दूसरा चेहरा वो, जो हरेक को दिखाई नहीं देता, जैसा मैंने देखा. उसका दूसरा चेहरा बहुत घिनौना है मैडम जी ! मिश्रा जी का दूसरा चेहरा वह आज तक नहीं देख पायी. कई बार मिश्रा जी उसके पास आते-जाते रहे... कई बार वह मिश्रा जी के साथ उनकी मोटर साइकिल पर बैठकर चोरडोंगरी से नवेगांव तक भी आयी है, पर अभी तक मिश्रा जी ने ऐसी कोई हरकत नहीं है, जिससे वह मिश्राजी का दूसरा चेहरा देख सके. लेकिन अशरफ़ झूठ क्यों बोलेगा ? सोच कर हैरान थी वह.

ट्रेन पटरियों पर तेज़ गति से दौड़ रही थी.

❑

पंछूलाल दौड़ता हुआ आया और हांफते हुए बोला, "मैडम जी, अशरफ़ अस्पताल में भर्ती है."

वह चौंक गयी, " क्यों ?"

"किसी ने उसको बहुत बुरी तरह से मारा है." पंछूलाल अभी भी हांफ रहा था.

उससे कुछ बोलते नहीं बना.

"वो तो अच्छा हुआ मैडम जी कि उधर से एक ट्रक निकला. ट्रक के ड्राइवर ने उसे सरकारी अस्पताल पहुंचा दिया." पंछूलाल का हांफना जरा कम हुआ, "आप उसे देखने जाओगी ?"

"जाऊंगी. ज़रूर मिलूंगी उससे." उसने कहा.

पंछूलाल चला गया. अशरफ़ की बात सुनकर उसे अच्छा नहीं लगा. दो दिन पहले आया था. बहुत अनमना लग रहा था. उससे नानी के पास चलने की ज़िद कर रहा था. ये भी कह रहा था कि नानी उसे बहुत याद कर रही है. अंधेरा हो रहा था, इसलिए नहीं गयी थी. थोड़ी देर बैठ कर अशरफ़ चला गया था. और अब ये ख़बर ! उसकी इच्छा हुई कि वह अभी छिंदवाड़ा चली जाये और अशरफ़ से मिल ले. पर अब जायेगी कैसे ? आख़िरी बस भी निकल गयी होगी. उसने सोचा - अब कल पहली बस से जायेगी. इधर दिन भर में तीन प्राइवेट बसें चलती हैं कहीं भी आने-जाने के लिए. एक बस निकल जाये तो घंटों इंतज़ार करना पड़ता है. आपात् स्थिति में भी अन्य कोई दूसरा साधन नहीं.

वह निश्चिंत थी कि अब उसे सुबह ही जाना है.

रात में उसे बहुत देर तक नींद नहीं आयी.

अस्पताल पहुंचते-पहुंचते साढ़े ग्यारह बज गये.

अशरफ़ बेड पर लेटा है. ग्लूकोज़ की बोतल चढ़ी हुई है. उसके पास उसकी नानी बैठी है. उसे देख नानी की बूढ़ी आंखों से आंसू बहने लगे. उसने देखा कि अशरफ़ के पैर और सिर पर पट्टी बंधी हुई है. सिर की पट्टी पर ख़ून के धब्बे लगे हुए हैं.

"सिर का ख़ून बंद नहीं हो रहा बेटी." नानी ने रोते हुए बताया.

"सब ठीक हो जायेगा नानी. चिंता मत करो." उसने नानी को दिलासा दिया. उसने यह भी महसूस किया कि अशरफ़ की हालत चिंताजनक और गंभीर है.

"चिंता क्यों न करूं !" नानी ने अपनी छाती पीटी, "उसने मेरे बच्चे को ऐसा मारा है कि...."

"नहीं नानी, नहीं."

"दोज़ख नसीब हो मरदूद को." नानी ने बद्दुआ दी.

वह कुछ नहीं बोली.

हाथ में दवाई की पॉलीथीन की थैली पकड़े मोटू आया. मोटू के साथ एक लड़का और था. उसे देख मोटू उसकी ओर लपका, "अच्छा हुआ मैडम जी आप आ गयीं. अशरफ़ की हालत ठीक नहीं है. दो दिन से उसकी बेहोशी नहीं टूटी है. कभी-कभी शरीर हिलता-डुलता है, बस."

"ठीक हो जायेगा." उसने मोटू को दिलासा दिया, जैसे अभी थोड़ी देर पहले नानी को दिया था - बिल्कुल वैसे ही.

"नहीं मैडम जी, सिर में गहरी चोट लगी है. ख़ून बंद नहीं हो रहा है."

उसने सिर घुमा कर अशरफ़ को देखा.

"डॉक्टर कहते हैं कि इसे नागपुर ले जाओ." मोटू ने अपने माथे का पसीना पोंछा, "नागपुर के लिए पैसे भी तो हों."

वह कुछ नहीं बोली. चुप रही.

मोटू ने पॉलीथीन की थैली साथ वाले लड़के को पकड़ायी, "जा के सिस्टर को दवाई दे आ."

लड़का दवाई की थैली ले कर चला गया.

"नानी के पास के सारे पैसे ख़तम हो गये. मेरे पास के आधे बचे हैं." मोटू चिंता करने लगा. मोटू की चिंता स्वाभाविक थी - वह यह बात अच्छी तरह समझ रही थी.

"मैं हूं. चिंता करने वाली बात नहीं है." उसने कहा. उसके कहने भर से ही मोटू थोड़ा आश्वस्त हुआ.

सिस्टर को दवाई देकर मोटू के साथ वाला लड़का आ गया. मोटू ने पूछा, "दे आया ?"

"हां" लड़के ने अपना सिर हिलाया.

"सिस्टर आ रही है ?"

"कह रही थी कि तुम चलो, मैं अभी आती हूं." लड़के ने बताया. उसने देखा कि नानी का रोना ज़रा कम हो गया है.

"किसने मारा अशरफ़ को ?" उसने मोटू से पूछा.

"मिश्रा ने !"

"मिश्रा ने !" उसे आश्चर्य हुआ, "क्यों ?"

"मिश्रा कई दिन से अशरफ़ के पीछे पड़ा था."

"किस वजह से ?"

मोटू ने उसकी बात सुनी ही नहीं. वह अपनी रौ में बोला, "मिश्रा ने अशरफ़ का ऑटो चलाना हराम कर रखा था मैडम जी. जब देखो, तब ऑटो थाने में खड़ा करवा देता था."

"ये बात मुझे मालूम है." वह बोली, "पर क्यों ?"

मोटू चुप. कुछ नहीं कहा उसने.

"पुलिस के बड़े अधिकारियों से मिश्रा की शिकायत नहीं की ?"

"ग़रीब की कौन सुनता है !" मोटू ने बुरा-सा मुंह बनाया.

सिस्टर आ गयी. एक इंजेक्शन निकाल कर अशरफ़ को लगा कर चली गयी. थोड़ी देर बाद अशरफ़ के शरीर में हरकत हुई. विभा अशरफ़ की तरफ लपकी. मोटू और वह लड़का भी उसकी ओर लपके. नानी ने अपनी धोती से आंसू पोंछे. उसे लगा कि अशरफ़ आंखें खोल कर उसे देखेगा, पर अशरफ़ की आंखें बंद रहीं. थोड़ी सी हरकत के बाद अशरफ़ का शरीर फिर से निश्चेष्ट हो गया.

"मोटू, मिश्रा ने अशरफ़ को क्यों मारा ?" उसने मोटू से फिर पूछा.

"जाने दो मैडम जी," मोटू ने बात टालनी चाही.

"फिर भी... बता तो सही."

"मिश्रा अशरफ़ से आपको लेकर आने के लिए कहता था. आप अशरफ़ पर विश्वास करती हो - आ जाओगी अशरफ़ के साथ." मोटू ने कहा.

वह आश्चर्य में पड़ गयी, "मुझे !...क्यों ?"

"उसकी नीयत में खोट थी. मिश्रा आपके साथ ग़लत काम करने की नीयत रखता था मैडम जी." मोटू की आवाज़ लरज़ने लगी, "पहले तो अशरफ़ टालता रहा. जब उसने मिश्रा को साफ़ मना कर दिया कि वह मैडम जी के साथ ऐसा छल-कपट नहीं कर सकता, तब मिश्रा ने अशरफ़ के ऑटो से खींच कर सड़क पर अपने डंडे और लात-घूसों से ऐसा मारा है कि अब आप ख़ुद देख रही हो." कहने के बाद मोटू रो पड़ा. मोटू को रोता देख अशरफ़ की नानी भी बुक्का फाड़ कर रो पड़ी.

वह हतप्रभ रह गयी.

उसे याद आया - अशरफ़ ने बताया था कि मिश्रा के दो चेहरे हैं. एक चेहरा वो, जो सबको दिखाई देता है, और दूसरा चेहरा वो, जो हरेक को दिखाई नहीं देता ! मिश्रा के दूसरे चेहरे को वह आज तक नहीं देख पायी थी, पर आज देख रही है. अशरफ़ ने मिश्रा का दूसरा चेहरा पहले ही देख लिया था, जिसकी वजह से आज उसकी यह हालत है - सोचते हुए उसे बैचेनी होने लगी.

मोटू का रोना बंद हो गया. नानी अपनी धोती से आंसू पोंछ रही है. अशरफ़ बेड पर निश्चेष्ट लेटा है. कभी-कभी उसके शरीर में हरकत होने लगती, पर उसकी आंखें नहीं खुलतीं.

उसे अभी भी बेचैनी हो रही है... बहुत हो रही है.

✉ विद्या भवन, सुकरी चर्च, जुन्नारदेव,
जिला-छिंदवाड़ा (म. प्र.)-४८० ५५१

आतंकवादी

'इन्स्पेक्टर साहब आप मुझसे बार-बार एक ही सवाल क्यों पूछ रहे हैं ?'

- विश्वास तो हम अपने सगे बाप पर भी नहीं करते ! प्रत्येक अपराधी अपने को निर्दोष ही समझता है, इन्स्पेक्टर ने डपटते हुए कहा - सच सच बता दो तो क़ानून तुम्हें छोड़ देगा.

- मैं सच ही तो बता रहा हूं, आप हैं कि मानते ही नहीं ! परेश ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की.

- तुम क्यों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हो ! सच बोलकर अपनी जान बचा क्यों नहीं लेते ?

- साहब मैं किसकी क़सम खाकर बतलाऊं कि मैं सच बोल रहा हूं ?

- क़सम आजकल झूठे लोग खाते हैं. तुम्हारे जैसों के लिए तो क़सम की क़ीमत ही क्या है ? इन्स्पेक्टर ने उसे डांटा.

- क्या संसार में सच बोलने वाले हैं ही नहीं ? वे सब मर-खप गये हैं ?

- उनकी शक्ल कुछ और ही होती है.

- यदि आप शक्ल-सूरत पढ़ने में माहिर होते तो निश्चित रूप से मुझे छोड़ देते.

- अब ज़्यादा बनो मत सच-सच बता दो कि तुम किस 'ग्रुप' के लिए काम करते हो ? इन्स्पेक्टर ने डंडा खड़काया.

इतने में डॉक्टर भी वहां आ पहुंचा. डॉक्टर ने कड़कती आवाज़ में इन्स्पेक्टर से कहा - इस तरह से आप मेरे मरीज़ को 'नर्वस' मत कीजिए, जो कुछ पूछना है प्यार से पूछिए. यह अस्पताल है, पुलिस थाना नहीं ! मरीज़ को अधिक हैरान मत कीजिए और न ही उसके मन में आतंक पैदा कीजिए !

इन्सपेक्टर ने विनम्रता से उत्तर देते हुए कहा - बस दो-चार सवाल और पूछकर जाता हूं, बाकी बाद में आकर पूछूंगा जब आपकी नज़रों में यह स्वस्थ हो जायेगा.

डॉक्टर के चले जाने के बाद इन्स्पेक्टर फिर से परेश की तरफ मुड़ा - तुम बताते क्यों नहीं कि तुम्हारे और साथी कहां हैं ?

- फिर वही सवाल ! 'तुम किसके लिए काम करते हो ?' 'तुम्हारा कौन सा ग्रुप है ?' 'साथियों के नाम क्या हैं ?' 'उनका मकसद क्या है ?' कौन-कौन से नये प्लान हैं ? 'तुमने बम क्यों फेंका था ?' 'किसको मारना चाहते थे ?' 'किससे क्या दुश्मनी थी ?' आदि आदि ! मेरे तो कान पक गये; अब सिर भी दुखने लगा है. ऐसा कब तक चलेगा ?

- जब तक तुम इनके सही जवाब नहीं दोगे, मैं पूछता रहूंगा. पूछता ही रहूंगा.

- मैंने जितने भी जवाब दिये हैं वे सब सही हैं, साहब. मैं आपको किस प्रकार विश्वास दिलाऊं ? हनुमान तो हूं नहीं कि छाती चीर कर दिखा दूं.

- यह 'फिलॉसफी' अपने पास रखो. आजकल के ज़माने में न कोई राम है और न ही कोई रामभक्त हनुमान. भलामानुस बन और सरकारी गवाह बन जा, फिर तुम्हारे पौ बारह, पांचों उंगलियां घी में.

जीवतराम सेतपाल

- आप बेकार में अपना सिर खपा रहे हैं और मेरा सिर खा रहे हैं ! मैं तो तंग आ गया हूं आपकी बातें सुन-सुनकर.

- फिर ऐसा काम करते ही क्यों हो ?

- आप मुझे जान बूझकर अपराधी बना रहे हैं.

- क्या बकते हो ? अक्ल से काम लो. मेहरबानी समझो कि तुम्हारे साथ अभी तक कोई 'डिग्री' नहीं लगायी है अब तक! थाने में होते तो दिन में तारे नज़र आते. तुम बीमार हो, अस्पताल में पड़े हो, हम भी क़ानूनी बंधन से बंधे हैं. इसीलिए अब तक बचे हुए हो. मन ही मन फूल रहे हो. बिल्ली की मां कब तक ख़ैर मनायेगी ? समझ में कुछ आता है ? भल मनसाहत इसी में है कि अपना गुनाह क़ुबूल कर लो. सरकारी गवाह बन कर अपना जन्म सुधार लो. इसी में तुम्हारा कल्याण है.

अपना माथा पीटते हुए परेश ने सोचा - मैं बेकार में होश में आ गया. बेहोशी में गुम होता तो ठीक था. कम से कम यह मुसीबत तो गले न पड़ती.

- गुनाह की सज़ा कौन भोगेगा ?

- मैंने जब गुनाह किया ही नहीं है तो भुगतना कैसा ?

- चोर कभी स्वयं को चोर मानता है ?

- साहब आप जानबूझ कर मुझे जाल में फंसा रहे हैं.

- ऐ मिस्टर, ज़बान सम्हालकर बात करो ! क्या बकवास कर रहे हो ? हम रक्षक हैं, भक्षक नहीं.

- ठीक है, आपकी बात बराबर है इन्स्पेक्टर साहब. लेकिन मैं भी तो अपराधी नहीं हूं.

- तो ये ज़ख्मी हुए और इसी अस्पताल में भर्ती किये गये सभी लोग झूठे हैं ? इन्होंने अपनी आंखों से तुम्हें बम फेंकते हुए देखा है.

- क्या...SS ? मैंने बम फेंका ? बहुत हो गया साहब. असली अपराधी नहीं मिला तो एक निरपराध को अपराधी बना रहे हैं.

- फिर से बकवास की तुमने ? सारे सुबूत तुम्हारे 'अगेन्स्ट' गवाही दे रहे हैं. तुम्हें तो निश्चित रूप से सज़ा मिलेगी.

- इन्स्पेक्टर साहब, मैं बेगुनाह हूं, मुझे बचाइए.

- तभी तो मैं कह रहा हूं सारे राज़ खोल दो. सरकार की मदद करो, आतंकवादियों को पकड़वा दो. उनका अता-पता देकर ख़ुद को बेगुनाह साबित कर दो.

- जब मेरे पास कोई सूचना है ही नहीं, तो क्या दूं ?

- देखो, आ गये न फिर से अपनी औक़ात पर, इतनी ज़िद अच्छी नहीं. मैं तो आया था तुम्हारी सहायता करने के लिए. तुम आज़ाद होना ही नहीं चाहते तो मैं क्या कर सकता हूं ?

- पुलिस वालों को तो दूसरों पर विश्वास होगा ही नहीं, न. आप लोग जो बोलें, सो सही. बाकी सब ग़लत.

- भूल-चूक सबसे होती है, परंतु इस केस में चश्मदीद गवाह भी हैं. सुबूत मिलने पर कौन विश्वास नहीं करेगा ? व्यर्थ स्वयं को छिपाने की कोशिश मत करो, सब तुम पर लानत भेज रहे हैं. यदि पुलिस तुमको अपने संरक्षण में न ले लेती तो तुम्हारा तो वहीं जनता-जनार्दन राम नाम सत कर देती.

- वही अधिक अच्छा होता. इस ज़िल्लत से तो बच जाता. महंगाई से कमर कमान हो गयी है. वकील और डॉक्टर अलग से लूट-मार लगाये बैठे हैं, बच्चों की पढ़ाई ने दिमाग़ ख़राब कर रखा है. कोचिंग क्लासों की गलाकाटू फीस का तो कहना ही क्या ? चीज़ों में मिलावट, बीमारियों का बोझ ढोते-ढोते सचमुच जीना जंजाल हो गया है. कब तक कोई छटपटाता रहे ? कमाने वाला मैं अकेला, खाने वाले दस ! कहां से भरण-पोषण करूं ?

- तभी तो ! इसी फ्रस्ट्रेशन में ही तुमने यह ग़लत क़दम उठाया है ! आ गये न सच्ची बात पर. अब बताओ तुम किसके लिए काम करते हो ?

- अरे बाप रे. मेरे लिए तो मुसीबत हो गयी. मैं कहना क्या चाहता हूं और आप अर्थ क्या लगा रहे हैं ? कोई रास्ता ही नज़र नहीं आ रहा.

- रास्ता नज़र क्यों नहीं आ रहा. वह तो सामने पड़ा है, तुम देखना ही नहीं चाहते. उस रास्ते पर चलना ही नहीं चाहते!

- यह भी कोई बात हुई.

- तुम्हारे लिए एक ही रास्ता है, तुम सच बोलो, पुलिस को बताओ, तुम्हारे पीछे कौन-कौन हैं ? मैं प्रॉमिस करता हूं कि तुम्हारा एक बाल भी बांका नहीं होगा.

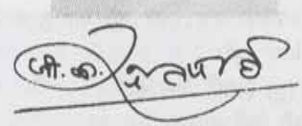

१ जनवरी १९३७, इंदौरः

एम. ए. (हिंदी, संस्कृत), साहित्यरत्न, पत्रकारितारत्न

लेखन : *उपन्यास, कहानियां, लघुकथाएं, यात्रा-वर्णन, आलेख, नाटक, कविताएं एवं ग़ज़लें आदि सभी विधाओं में लेखन. सिंधी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद.*

प्रकाशन : *अनुवाद सहित १३ कृतियां प्रकाशित. तीन पुस्तकें यंत्रस्त. १००० से अधिक रचनाएं प्रकाशित एवं प्रसारित.*

पुरस्कार : *उ. प्र. हिंदी संस्थान द्वारा सौहार्द पुरस्कार - भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी जी द्वारा सम्मानित. इसके अतिरिक्त १३ अन्य सम्मान, उपाधियां व पुरस्कार.*

विशेष : *हिंदी प्रचारक - हिंदी प्राध्यापक. अनेक कवि सम्मेलनों में भाग लिया. दिल्ली के लाल किले के कवि-सम्मेलन में तीन बार भाग लिया (१९६७, ६८, ६९).*

संप्रति : *३७ वर्षों से 'प्रोत्साहन' नामक पत्रिका का प्रकाशन एवं संपादन.*

- इन्स्पेक्टर साहब, आप किसी के हाथों ज़हर मंगवा दीजिए तो मैं अपनी इह-लीला ही समाप्त कर दूं.

- वाह, वाह, वाह, वाह ! सयाने बनते हो ? तुम्हारा जीवन आज़ाद और मैं कटघरे में ? मुझे जेल की हवा खिलाना चाहते हो ? कल को बड़े-बड़े अक्षरों में अख़बारों में आ जायेगा, 'इन्स्पेक्टर विश्वकर्मा ने एक आतंकवादी को आत्महत्या करने में सहायता की !'

- आप तो मेरी हर बात का उलटा ही अर्थ लगाते हैं.

- तुम जैसा बोलोगे, बात का मतलब तो वैसा ही निकलेगा न !

- हे भगवान ! यह मुझे किस मुसीबत में धकेल दिया है ? अब मैं क्या करूं ? क्या....SS करूं....SS?

- भगवान को दोष मत दो, मुसीबत तो तुमने ख़ुद मोल ली है ! मेरा कहना मानोगे तो मुसीबत अपने आप टल जायेगी.

- मैं तो पागल हो जाऊंगा !

- तुमने काम ही ऐसा किया है.

- इन्स्पेक्टर साहब, मैं हाथ जोड़ता हूं, क्षमा कर दें, मेरा सिर फटा जा रहा है, लगता है फिर से बेहोश हो जाऊंगा.

- अच्छा, तो तुम अब सिर्फ़ इतना बता दो कि तुमने बम फेंका कि नहीं ?

- नहीं, नहीं, नहीं; हज़ार बार नहीं...SSS.

- कुछ तो फेंका था ?

- वह 'बॉल' था, खेलने वाला 'बॉल'.

- तुमने 'बॉल' फेंका और वह फट गया ?

- मुझे पता नहीं.

- फिर तुम ज़ख्मी कैसे हुए ?

- यह भी नहीं मालूम.

- अजीब बात है. तुमने बम फेंका, तुम ज़ख्मी हुए, दूसरे लोग भी ज़ख्मी हुए. तुम्हें लोग अस्पताल ले आये और तुम्हें पता ही नहीं. बड़े भोले बनते हो ! कोई भी विश्वास नहीं करेगा.

- लगता है आप मुझे सूली पर चढ़ाने की पूरी-पूरी तैयारी करके आये हैं.

- अब तुम ग़लत समझ रहे हो. अपने मददगार को दुश्मन समझ रहे हो.

- आप तो मुझे अपराधी साबित करके तमग़ा हासिल करना चाहते हैं, भले मुझे फांसी लग जाये. आपको अब भी दुश्मन न समझूं ? मददगार कोई ऐसा होता है ?

- क्या तुमने बम नहीं फेंका था ?

- वह तो बॉल था, बम कहां से हो गया ?

- वह बॉल नहीं था, गेंद की शक्ल में बम था.

- क्या ...SSS ? वह बम था ?

- हां SS हां, वह बम था !

अरे, इसे यह क्या हो रहा है ? नर्स, देखो तो, शायद बेहोश हो रहा है.

एक नर्स दौड़ती हुई आती है. सहारा देकर परेश को सुला देती है. दूसरी डॉक्टर को बुलाकर लाती है. डॉक्टर चेकअप करता है और कहता है - इसके दिमाग़ पर असर हुआ है, किसी बात का झटका लगा है. मैंने इन्जेक्शन दे दिया है, अब इसे आराम करने दो. शाम तक थोड़ा ठीक हो जायेगा. और इन्स्पेक्टर साहब जब तक मेरा मरीज़ अच्छी तरह से ठीक नहीं हो जाता, तब तक इससे और पूछताछ न करें तो बेहतर होगा. आप अपना आतंक मेहरबानी करके मेरे मरीज से दूर रखें. ऐसी कोई पूछताछ न करें, जिससे इसके दिल-दिमाग़ को धक्का लगे.

सब चले जाते हैं. शाम होती है और परेश की पत्नी आती है. परेश अब थोड़ा ठीक है. पत्नी को देखकर उससे कहता है - आओ, आओ, बस तुम्हारी ही कमी थी.

पत्नी ने रोते-रोते पूछा - यह आप क्या कर बैठे हैं ?

- यह सब तुम्हारी करतूतों का फल है.

- मेरी करतूत ? क्या मतलब ? आप ऐसे काम करते ही क्यों हैं ?

- अब तुम भी पुलिस इन्स्पेक्टरी मत जताओ. सवालों के जवाब देते-देते तो मेरी जीभ ही थक गयी है.

- कैसे सवाल ? आप स्वयं जान से बेहाल लगे पड़े हैं !

- इन्स्पेक्टर कहता है कि मैं आतंकवादी हूं.

- हाय-हाय ! आप और आतंकवादी ? एक मेंढक मारने में हिचकिचानेवाला आतंकवादी कैसे हो सकता है ?

- यही तो वह समझता नहीं. मैंने तो बॉल फेंका था, वह और दूसरे लोग कहते हैं कि वह बम था.

- लेकिन वह बॉल लाये कहां से ?

- गार्डन में, जहां मैं बैठा था, वहीं पड़ा था.

- मैं तो आपको हवाखोरी के लिए इसलिए भेजती हूं ताकि आप तंदुरुस्त रहें.

- देख लिया न तंदुरुस्ती का नतीजा. देख-देख मैं कितना तंदुरुस्त हो गया हूं.

- आप तो ऐसे कह रहें हैं, जैसे यह सब मैंने किया है.

- तुझसे मैंने कितना कहा था कि, आज हवाख़ोरी का मेरा मन नहीं है. लेकिन तू न मानी. तंदुरुस्ती का वास्ता देकर घर से बाहर कर दिया. न घर से आज बाहर निकलता और न ही यह दुर्घटना घटती.

- मैंने आपको हवाख़ोरी के लिए भेजा था, रास्ते से चीज़ें बटोरने को नहीं कहा था. आप हैं भी तो लालची, देखा होगा बॉल पड़ा है, बस उठा ली. दो-चार रुपयों के लिए जान जोख़िम में डाल दी.

- मुझे क्या पता था कि ऐसी दुर्घटना घटेगी. और फिर मुसीबत पूछकर तो नहीं आती न.

- आप तो बच्चों की चीज़ों के प्रति भी आकर्षित हो जाते हैं. किसी ग़रीब-सरीब बच्चे को दे देते.

- ये कहो कि मैंने उसे बचा लिया है, एक सुंदर गदबदा-सा बालक आया भी, मैंने उसे डांटकर भगा दिया. मैंने सोचा अपने बच्चे खेलेंगे, फिर याद आया कि अपने बच्चे तो बड़े हो गये हैं. मैं लौटकर बगीचे में आया इस विचार से कि गेंद उस छोटे बालक को ही दे दूं, लकिन वह बालक वहां था ही नहीं. दूसरे एक ग़रीब बच्चे को बुलाया तो वह आया ही नहीं. मुझे गुस्सा आ गया और ज़ोर से वह गेंद फेंक दी. उसके बाद मुझे कुछ भी पता नहीं. जब होश आया तो मैं अस्पताल में पड़ा था और पास में पुलिस बैठी थी. अब तू ही बता इसमें मेरी क्या ग़लती ?

- ग़लती है ! आपने रास्ते की चीज़ उठायी क्यों ? सरकार और पुलिस बार-बार सूचनाएं देती रही है कि रस्ते पर पड़ी किसी भी लावारिस वस्तु को न छुयें, पुलिस को सूचना दें. लेकिन आपने

ऐसा नहीं किया. अब आप अपना सिर पीट रहे हैं. बस और ट्रेनों में भी तो बोर्ड लगे हुए हैं. आपका ध्यान क्यों नहीं गया इन सूचनाओं पर ?

- भाग्य में ऐसा बदा था. जो होना था सो हो गया. अब क्या करें ?

- आपने यह बात इन्स्पेक्टर को बतायी ?

- कई बार, वह माने तब न ! यही नहीं, मैंने अपनी देशभक्ति का भी हवाला दिया. वह इसे मनगढंत बतलाता रहा है. बस एक ही रट लगाये बैठा है कि मैं आतंकवादी हूं.

- अध्यापक क्रांतिकारी हो सकता है, लेकिन आतंकवादी नहीं, क्या वह यह नहीं जानता ?

- अब उसे कौन समझाये ?

- ख़ैर, कोई बात नहीं. आप चिंता न करें, मेरी एक सहेली है, उसका पति बहुत बड़ा वकील है... श्याम ठेठमलानी. उसने बड़े-बड़े जटिल केस जीते हैं, अपना केस तो उसके बायें हाथ का खेल है.

- मगर इतने पैसे हम लायेंगे कहां से ?

- पैसों की ज़रूरत नहीं पड़ेगी. वह सच्चे केस लड़ता है, अपना भी केस सच्चा है. मैंने उसके बच्चों को बरसों तक पढ़ाया है. आग्रह करने पर भी मैंने उससे एक नया पैसा नहीं लिया था. उसने हमसे एक प्रॉमिस किया था कि जब भी हमको उसकी सहायता की ज़रूरत पड़ेगी, वह हमारा केस मुफ़्त में लड़ेगा.

- मुझे इस बात पर हंसी आती है.

- यही तो आपकी गंदी आदत है कि आप सबको एक ही तराज़ू से तौलते हैं.

- यह तो वक़्त ही बतायेगा.

- ठीक है, लेकिन अब आप क़सम खा लें कि रस्ते पर पड़ी, बस या ट्रेन में छूटी हुई किसी भी लावारिस चीज़ को हाथ नहीं लगायेंगे.

- मैं क्या ? मेरे अगले-पिछले सभी ने तौबा की, बस एक बार ईश्वर इस मुसीबत से बचाये.

- भरोसा रखो भगवान पर. सब ठीक हो जायेगा. आप दिल छोटा न करें. किसी से डरिए मत. सांच को आंच क्या ? उसके दरबार में देर है, अंधेर नहीं.

- बात बराबर है, लेकिन ग़लतफ़हमियों के कारण कितनों को सज़ाएं मिलती रहेंगी ?

- आपको सज़ा नहीं मिलेगी, ग़लतफ़हमी दूर हो जायेगी.

- यह तुम समझती हो, इन्स्पेक्टर तो नहीं समझता न.

- लेकिन, वहां बम रखा किसने ?

- देखता तो साले का गला ही न दबा देता. कठिनाई यही है कि लोगों ने मुझे गेंद फेंकते हुए देखा. यही वे कोर्ट में भी कहेंगे. मुझे नहीं लगता कि मैं बच पाऊंगा. सारे सुबूत मेरे विरुद्ध जा रहे हैं. अपने आपको मैं निरपराधी कैसे साबित कर पाऊंगा ?

- वह बाद की बात है.

- अरे बाबा, सज़ा तो मिलनी ही है. अब तू अपना दिल छोटा मत करना. मेरे पीछे सम्हलकर रहना, हिम्मत से काम लेना. सोच-समझकर घर चलाना. तंदुरुस्ती के नाम पर यह सज़ा मुझे सात जन्मों तक याद रहेगी.

- आप चिंता क्यों करते हैं ? मैं अभी वकील से बात कर लेती हूं, कोई न कोई रास्ता तो निकल ही आयेगा.

- वक़ील क्या करेगा ? किस बात पर लड़ेगा ? सुबूत और गवाह मेरे अगेन्स्ट हैं. मैं फिर से कहता हूं कि सज़ा तो मुझे मिलनी ही है. यही मानकर चलोगी तो बाद में तुम्हें अधिक दुःख नहीं होगा.

- मैं भी पागल हूं नाहक हवाख़ोरी के लिए आग्रह किया. अभागन कहीं की. यदि एक दिन हवाख़ोरी पर न जाते तो क्या बिगड़ जाता ? सारा दोष मेरा ही है.

- पश्चाताप से क्या लाभ ? जो होना था, हो चुका. पिछले जन्म में कोई पाप किया होगा, उसका फल तो भोगना ही है न. बच्चे कैसे हैं ?

- रो रोकर आंखें सुजा ली हैं. बाहर खड़े हैं.

- ले आओ उन्हें.

बच्चे आकर रोते-रोते, पापा-पापा कहते उसके गले लगते हैं. परेश का भी गला भर आता है.

- जिसने भी सुना, उसे अजीब लगा. किसी को भी विश्वास नहीं हो रहा था.

- कैसे आयेगा ? मैं ऐसा आदमी हूं ही नहीं.

- फिर भी सच को मार पड़ रही है.

- जो ऊपर वाले की मर्ज़ी !

- अच्छा, मैं चलती हूं, वक़ील से मिलती हूं, देखूं वह क्या कहता है ? बच्चे भी विदा लेते हैं.

परेश की पत्नी शीला वकील के पास जाती है. वकील ने अपनी व्यस्तता के बहाने असमर्थता जतायी. आग्रह करने पर उसने कहा कि वह हारनेवाले केस नहीं लेता.

❑

कुछ दिन परेश अस्पताल में रहा. ठीक-ठाक होने के बाद कोर्ट में केस चला. उसे सात साल की बामशक़्क़त सज़ा सुनायी गयी.

इन्स्पेक्टर को पुरस्कृत किया गया, उसकी पदोन्नति की गयी.

सं. 'प्रोत्साहन'- 'सिंधु', बेसमेंट, २०५,
शीव (पूर्व), मुंबई - ४०० ०२२.

कहानी

बिके हुए हाथ

जुम्मे की नमाज़ जैसे ही ख़त्म हुई वह लगभग दौड़ता हुआ मस्जिद से बाहर निकलकर सड़क पर आ गया. 'नारे तकबीर, अल्लाह हू अकबर' के शोर ने उसे चारों तरफ से घेर लिया. आज उसकी दिली ख़्वाहिश तो यही थी कि वह रैली में अव्वल नंबर की क़तार में रहे, लेकिन उसके आगे कई नौजवान निकल आये थे और जेहादी नारे लगाते हुए तेज़-तेज़ क़दमों से चल रहे थे. यह देख कर पहले तो उसे गुस्सा आया फिर अपने बुढ़ाते जिस्म पर कोफ़्त हुई, लेकिन फिर ज़हन के भीतर से ख़ुशी का एक गोला अचानक उछला और उसके ज़र्द चेहरे को दमकाने लगा. नयी नस्ल के छोकरों में अपने मज़हब के लिए फ़ना हो जाने का जो जज़्बा वह देख रहा था वही उसकी ख़ुशी का सबब था. अपने सींक से पतले हाथ की मुट्ठी भींच कर जब वह हवा में लहराता तो उसकी सारी की सारी नसें ख़ून से लबालब हो भरभराकर उभर आतीं. पिचके हुए गालों वाले मुरझाये चेहरे पर रौनक़ सी दौड़ जाती, जैसे सारे जिस्म का ख़ूं उफ़न कर हाथ और चेहरे में ही भर गया हो. 'इस्लाम ज़िंदाबाद' की उसके गले से निकलती पतली सी चीख़ जेहादियों की चीख़ों के साथ मिलते ही लपक कर आसमान की बुलंदियों को छूने लगती और ऐसे हर मौक़े पर वह अपने सर को फख्र से ऊंचा उठा पाता था. तभी उसका ख़याल अपने क़दम से क़दम मिला कर चल रहे शख़्स की ओर गया, अरे यह तो अफ़ज़ल था. उसे इस तरह साथ-साथ चलते देख उसे ताअज्जुब हुआ लेकिन जब उससे नज़रें मिलीं तो उसकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा क्योंकि आज अफ़ज़ल की आंखों में हिक़ारत की जगह मुहब्बत का सैलाब उमड़ रहा था. मारे ख़ुशी के उसके मुंह से बोल ही नहीं फूट रहे थे. आंखों ही आंखों में दोनों ने दुआ सलाम की और उमड़ती भीड़ के बहाव में यहां से वहां बहते रहे. उसे लगा वह अपने नहीं भीड़ के पैरों चल रहा है, भीड़ के तो पैर ही नहीं होते, तो फिर वह चल कैसे रहा है ? तभी एक ज़ोर का धक्का लगा और वह सड़क के किनारे खड़े दरख़्त से जा टकराया. माथे को सहलाते-सहलाते जेब से एक बीड़ी निकाल कर सुलगाई और एक लंबा सा कश खींच कर वहीं बैठकर सुस्ताने लगा.

इस मुल्क में रहते हुए आधी सदी बीत चली लेकिन आज तक उसे और उस जैसे किसी भी शख़्स को कभी भी वह इज़्ज़त, वह अपनापन नहीं मिल पाया जो एक ही मुल्क में रहने वाले बाशिंदों को एक दूसरे से मिला करता है. वह और उसका खानदान उस मुहब्बत से भी महरूम थे जो एक नेक पड़ोसी को दूसरे पड़ोसी से या एक नेक शहरी को दूसरे से, मिलनी चाहिए. दरअसल यह कुछ तो उसके वालिद के ज़िंदगी जीने के तौर तरीक़ों की वजह से था. और कुछ इस मुल्क के उन बाशिंदों की सोच का नतीजा था जो इस मुल्क को केवल अपनी ही जागीर समझते थे. यक़ीनी तौर पर उनका यह मानना था कि सिवा उनके और किसी के लिए यह मुल्क है ही नहीं. एक सोची समझी चाल के तहत ही उन्हें मुल्क की सियासत से और अहम फैसलों से जानबूझ कर दूर ही रखा जाता था. उसका सबसे बड़ा गुनाह था तो बस यही कि वह एक मुहाजिर की औलाद था.

डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी 'शलभ'

उनका यक़ीनी तौर पर यह मानना था कि मुहाजिर नेक मुसलमां भले हो लें, सच्चे वतनपरस्त कभी भी नहीं हो सकते. उसे बस इसी बात का रंज था. यह उसके सीने के बीचों-बीच बना ऐसा नासूर था, जिसे भरने की लाख कोशिशें की गयीं लेकिन कोई न कोई उस ज़ख़्म को इस या उस बात से कुरेद कर फिर से हरा कर देता था. हालांकि उसमें उसके वालिद का भी पूरा-पूरा हाथ था. ज़िस्मी तौर पर तो वे हिंदुस्तान छोड़कर यहां आ बसे थे लेकिन उनके ज़हन में पूरा का पूरा हिंदुस्तान ज़िंदा था, वहां की तहज़ीब ज़िंदा थी और मरते दम तक ज़िंदा रही. बरसों तक गंगा मैय्या की जय बोलने वाले और उसके जल को आबेहयात की मानिंद पाक समझने वाले अपने वालिद से वह बस इसी बात पर नाराज़ रहा, लेकिन बंटवारे के वक़्त हमेशा-हमेशा के लिए हिंदुस्तान छोड़कर अपनी पाक सरज़मीं पर आ बसने के फैसले ने ही उसे उनसे बांधे रखा, भले ही यह फैसला उन्होंने अपने छोटे भाई के दबाव में या उसका दिल रखने के लिए ही क्यों न लिया हो, उसे बेहद सुकून देता था.

आठ-दस बरस की उम्र कच्ची भले ही रही हो लेकिन उस समय के सारे वाकयात उसे बख़ूबी याद थे. कैसे वह अपने नन्हें-नन्हें हाथों से नाव को किनारे पर गड़े खूंटे पर रस्से से लपेट कर बांधता फिर अपने अब्बू की आवाज़ में आवाज़ मिलाकर कहता ओ माई, ओ बाबा यह "कामधेनु" ही पार उतारेगी आओ-आओ. और देखते ही देखते उनकी 'कामधेनु' मुसाफिरों से खचाखच भर जाती फिर 'होहा-होहा' की हांक से अब्बू की दुबली पतली बांहों

में न जाने कहां से इतनी ताकत आ जाती कि हाथ की पतवार गहरे पानी को चीरते हुए पलक झपकते दूसरे किनारे लगा देती. अब्बू अपनी भारी भरकम आवाज़ में 'ओ गंगा मैय्या तोहे चुनरी री चढ़इबो' - की लोक धुन छेड़ते तो सभी मुसाफिर झूम-झूम कर वाह-वाह कर उठते. 'जय गंगा मैय्या की', के गगन भेदी जयघोष के साथ सब लोग उतरने लगते. लौटते वक़्त मुसाफिरों के लिए ज़रा भी ज़ेहमत उठनी न पड़ती, देव-दर्शन कर वापस घर लौटने की जल्दी में नाव किनारे लगाते ही मुसाफिरों के उतरते-उतरते फिर से भर जाती. उनका यह उतावलापन कभी-कभी तो उतरने वालों के लिए परेशानी का सबब बन जाता. इस मुश्किल को अब्बू बड़ी आसानी से हल कर लेते. बूढ़े एवं कमज़ोर मुसाफिरों को अपनी बांहों का सहारा दे महफ़ूज़ जगह तक छोड़ आते और बदले में ढेरों दुआएं पाते. हर पूरनमासी के दिन सुनहरे गोटा किनारी वाली लाल हरी चूनर और नारियल गंगा मैय्या को चढ़ाना वे कभी नहीं भूलते. खोपरे-गुड़ का परसाद बांटा जाता जो उसकी तरह मछलियों को भी बहुत भाता था.

अब्बू हम तो मुसलमान हैं फिर यह चूनर, यह नारियल का परसाद क्यों ? पूछ लिया था उसने एक दिन. तब उसके अब्बू ने उसे प्यार से अपने पास बिठाते हुए बड़े इत्मीनान के साथ बताया था, बेटा यह गंगा मैय्या है ना हम नाविकों की मां है. हमें इससे रोज़ी-रोटी तो मिलती ही है, यह मैय्या हमारा ख़याल भी रखती है कभी किसी नाविक को डुबोती नहीं. बड़ी मेहरबानियां हैं इसकी हम पर. इस तरह से हम उसका शुक्रिया अदा करते हैं. और फिर ये पहाड़ ये नदी-नाले तो उसी परवरदिगार ने बनाये हैं ना. उस पर किसी एक मज़हब वालों का हक़ तो हो नहीं सकता, उसकी नेमतें तो सबके लिए होती हैं. तब वह अपने गांवठी अनपढ़ अब्बू का मुंह ताकता रह जाता. उनकी बातें तब उसकी समझ में कम ही आतीं. लेकिन वक़्त बीतने के साथ उन बातों की सच्चाई और भी अच्छी तरह से निखर आयी थी.

अचानक ही अंग्रेज़ों के भारत छोड़ देने और आज़ादी मिल जाने की ख़बरें मिलीं. तब सबने मिलकर ख़ूब ख़ुशियां मनायीं. उसे अच्छी तरह से याद है उस दिन पूनम न होते हुए भी अब्बू ने गंगा मैय्या को चूनर और नारियल चढ़ाये थे. आख़िरी खेप भर कर नाव किनारे लगायी तो वहां चाचू खड़े थे. वे अब्बू को एक तरफ खींच कर ले गये. बड़ी देर तक दोनों के बीच बहस होती रही. गंगा का पानी एकदम निर्मल एवं शांत था. चांदनी में बालू चांदी की तरह चमक रही थी. तीर्थयात्रियों की आवाज़ें धीरे-धीरे कम होती जा रही थीं. लेकिन चाचा की आवाज़ ऊंची होते सुन अपनी नाव किनारे के खूंटे से बांध कर मामू भी वहां दौड़े आये थे. देर रात तक दलीलें होती रहीं. खाना पका कर इंतज़ार करते-करते घर की जनानियां ऊंघने लगी थीं. खाना वैसे का वैसा पड़ा था.

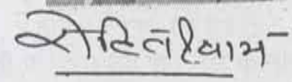

२२ जनवरी १९४९, बड़वानी, पश्चिमी निमाड़ (म. प्र.); चिकित्सा में डॉक्टरेट

लेखन : अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां, लघुकथाएं, कविताएं व ग़ज़लें प्रकाशित.

पुरस्कार : कहानी-संग्रह 'पारदर्शी चेहरे' गुजरात राज्य हिंदी साहित्य अकादमी से प्रथम पुरस्कृत. दो काव्य संग्रह 'यक्ष प्रश्न' और 'अभिशप्त है मन' भी अकादमी द्वारा पुरस्कृत.

अनुवाद : 'करोड़रज्जु' डॉ. सतीश दुबे की लघुकथाओं का गुजराती में अनुवाद.

संप्रति : गुजरात राज्य मेडिकल सर्विसेस वर्ग-२ मेडिकल ऑफ़िसर, भुज-कच्छ में कार्यरत.

अब्बू एवं मामू की लीगी चाचा के आगे एक न चली. सुबह होने से पहले ही हमारा ख़ानदान माल-असबाब के साथ नये वतन की राह बढ़ चला. बचा-खुचा सामान, नाव, घर मामू के हवाले करते समय अब्बू का गला भर आया था. गंगाजल से भरी डेगची सीने से लगाये भारी क़दमों से चल रहे थे वे. एक अर्से से चाचा अलग मुल्क की तहरीक में बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रहे थे. आज उनके लीडरान का ख़्वाब पूरा हो गया था इसलिए वे बहुत ही ख़ुश थे. चारों तरफ मार काट मची हुई थी. अपने दोनों हाथों में नंगी तलवार लिये वे तथा उनके कुछ लीगी दोस्त सबसे आगे चल रहे थे, मैं अब्बू की उंगली पकड़ कर उनके साथ-साथ चल रहा था. हमारे ठीक पीछे पर्दा बंद बैलगाड़ियां थीं जिन पर अम्मा, चाची तथा मुहल्ले की दूसरी जनानियां एवं बच्चे सवार थे. सबसे आख़िर में गली मुहल्ले के सारे मर्द तलवार, बर्छी भालों से लैस होकर चल रहे थे. सामने से हिंदुओं, सिक्खों का कोई जत्था गुज़रता तो एक अजीब सी बेचैनी सबसे दिलों दिमाग़ पर छा जाती और तब तक छायी रहती जब तक दोनों जत्थे एक दूसरे से दूर न निकल जाते. 'अल्लाहू अकबर,' 'हर हर महादेव' और 'बोले सो निहाल, सत्श्री अकाल' के नारों का शोर ज़मीं से लगाकर

आसमान तलक धूल एवं गर्द की तरह छाया हुआ था. कहीं कहीं तो दोनों जत्थे बुरी तरह भिड़ जाते, देखते ही देखते कई लोग ख़ून के दरिया में सराबोर हो जाते. कई सिखों को उनके केश से दरख़्त की डालियों पर टांग दिया गया था, उनके हाथ पांव काटकर उनकी नज़रों के सामने ही कुछ नौजवां उनकी बहन बेटियों पर बलात्कार कर रहे थे. रोने चीख़ने की आवाज़ों से सारा माहौल बेहद ग़मगीन और दम घोंटू हो उठा था. अल्ला-अल्ला करते हम अपनी मंजिल तक पहुंचे. दो-एक दिन कैंप में रहने के बाद लीग में अच्छी पैठ होने की वजह से एक सिख ख़ानदान द्वारा छोड़ी गयी बंगलानुमा कोठी हमें नये वतन में हासिल हो गयी थी, जिसमें सारे साजो-सामान के साथ-साथ घोड़े तथा गाय-भैंसें भी थीं. ऊपर मंजिल के कमरे में एक बेहद कमज़ोर तथा बीमार जवान औरत थी जिसकी दवा-दारू चाचा ने करवायी थी एवं ठीक होने पर उससे इस्लाम कुबूल करा उसके साथ निकाह भी पढ़वा लिया था. एशो आराम का तमाम बंदोबस्त होते हुए भी अब्बू अपने झोपड़े, नाव, घाट और गंगा मैय्या को भुला नहीं पाये थे. हम भाइयों को मदरसे में दाख़िल करवा दिया गया था, जहां इस्लाम के लिए मरने-जीने के पाठ पढ़ाये जाते थे साथ ही हिंदुस्तान एवं वहां बसने वाले काफिर बाशिंदों के लिए ज़हन में नफ़रत के बीज भी बोये जाते थे.

दिन ब दिन सियासत में चाचा की साख बढ़ती जा रही थी. एसेंबली के नुमाइंदे के तौर पर उनका नाम लगभग तय ही था, किंतु इसी बीच पाकिस्तान के मूल बाशिंदों एवं हिंदुस्तान छोड़कर आये मुसलमानों के बीच इख़्तिलाफ़ बढ़ने लगे थे, ताल्लुक़ात तंग होते जा रहे थे. देखते-देखते छोटी सी इस दरार ने खाई की शक्ल अख़्तियार कर ली थी. आजकल वह भी चाचू के साथ लीग के ऑफिस का कामकाज देखने लगा था.

वह रात और रातों की बनिस्बत कुछ ज़ियादा ही सर्द थी, ऑफिस के सारे मुलाज़िम जा चुके थे. इन्तख़ाब अनक़रीब होने की वजह से चाचा अक्सर देर रात तक अपने काम में मसरूफ़ रहते थे. वाचमैन सर्दी से बचने के लिए अलाव जलाने की तजवीज़ में था. तभी अचानक कुछ गुंडे-मवाली ऑफिस में घुस आये, 'साले मुहाजिर की औलाद हम पर राज करेगा, मरेगा साले आज तो ज़रूर मरेगा,' कहते हुए चाचा पर धावा बोल दिया. हम लोग अचानक हुए इस हमले को समझें इससे पहले ही चाचू की सारी अंतड़ियां पेट फाड़ कर उनके पैरों में आ पड़ी थीं. लावे सा दहकता गर्म ख़ून मेरे सर्द पैरों से छूते ही मैं हड़बड़ाकर खड़ा हो गया. तभी किसी ने मेरे गले पर छुरी रखते हुए कहा हरामज़ादे जा, जाकर कह दे अपनी क़ौम के हरामी पिल्लों से कि तुम्हारी भलाई इसी में है कि हमारे रहमोकरम पर चुपचाप पड़े रहें और पाकिस्तान पर हुकूमत करने का ख़्वाब मुहाजिर छोड़ दें वर्ना सबका यही अंजाम होगा. फिर 'इस्लाम ज़िंदाबाद, पाकिस्तान पाइंदाबाद, मुहाज़िर मुर्दाबाद' के नारे लगाते हुए चले गये.

इतनी सर्द रात में भी मुझे खर-खर पसीने छूट रहे थे. मेरे पैरों में पड़ा चाचू का गर्म लहू ठंडा पड़ चला था. गंगा मैय्या की जय एवं हर-हर महादेव कहने वाले विधर्मी लोगों के बीच हमेशा घिरे रहते हुए भी कभी ऐसी दहशत नहीं हुई थी, जैसी एक ही अल्लाताला को मानने वाले इन इस्लामी वहशियों से हो रही थी. दहशत और गुंडागर्दी का माहौल शिकारी बाज़ की तरह डैने फैलाये चारों तरफ मंडरा रहा था. दीनी तालीम में तो यह कभी नहीं सिखाया गया था कि इस्लाम के नाम पर, अल्लाह पर ईमान रखने वालों को ही ख़त्म करो, यह कौन सा मज़हब हुआ ? मज़हब की आड़ लेकर उभर रहे दरिंदों के इस नये फ़िक़रे के सर उठाने से वह डर गया. सारी दुनिया को अमन व भाई-चारे का सबक सिखाने वाले पाक इस्लामी मज़हब के ख़िलाफ़ दुनिया भर के लोगों को उंगली उठाने का माहौल बनाने की गंदी साजिश के आसार उसे दिखाई दे रहे थे. आज की यह वहशी हरकत देख कर वह सिहर उठा था. चाचा के क़त्ल का मामला सियासी हल्क़ों में ज़ोर-शोर से उछाला जा रहा था.

हिंदुस्तान में अपना घर-बार, कारोबार सब कुछ छोड़ कर पाक सरज़मीं पर चैनो सुकून से रहने के ख़्वाब अपनी आंखों में सजाये जो लोग आये थे, अचानक बदलते हुए इन हालातों से वे एकदम सकते में आ गये थे. नौज़वान जहां ईंट का ज़वाब पत्थर से देने की बात कर रहे थे, वहीं बड़े बुज़ुर्गों को अभी भी यह यक़ीं था कि कुछ ना-समझ ही ऐसी हरक़तें कर रहे हैं, क़ायदे आज़म के साथ पाक सरज़मीं को हासिल करने में जिन्होंने कोई कोर कसर नहीं उठा रखी थी, उनके साथ ऐसी बदसलूकी हो ही नहीं सकती. वे अभी ना उम्मीद नहीं हुए थे.

चाचा के मर्डर की ख़बर पा कर मामू पाकिस्तान आये. उस समय अब्बू बीमार चल रहे थे, उन्हें एक हाथ और पांव में फ़ालिज हो गया था. मामू से दुआ सलाम हुई तो वे पहचान ही न पाये. कौन हैं भाई ये जनाब ? मौलवी साहब हैं क्या ? तब अम्मी ने बमुश्किल अपनी हंसी रोकते हुए बताया था - नहीं-नहीं यह तो अपना अश्फ़ाक़ है. पहचाना नहीं ? पहचानते भी कैसे. कहां वह दुबला-पतला काला-कलूटा सींकिया पहलवान सा छोकरा और कहां मज़बूत कद-काठी तथा भरे-पूरे शरीर और क़रीने से मुलायम दाढ़ी भरे चेहरे वाला, अदब से उर्दू ज़ुबान बोलने वाला नौजवान. मामू के पास उनके नाम के सिवाय मुसलमानों जैसा कुछ भी न था. उनके बोलने-चलने, उठने-बैठने व खाने-पीने के तौर तरीक़े एक आम हिंदुस्तानी मल्लाह जैसे ही थे. वे एवं उनके तीनों बेटे अभी भी नाव चलाने का ही धंधा कर रहे थे, फर्क सिर्फ़ इतना हुआ था कि नावें अब पतवार के बजाय इंजन से चलने लगी थीं. यहां आकर बस जाने वाले मुसलमानों के हालो-हवाल देख कर मामू बहुत संजीदा हुए. अपने मामू के मुंह से हिंदुस्तान के मुसलमानों की ख़ुशहाली एवं बेखौफ़ आज़ादी की बातें

सुनकर तो उसे यक़ीन ही नहीं आ रहा था. हिंदुस्तान का आम आदमी आज भी पाकिस्तानी बाशिंदों को ग़ैर नहीं बल्कि अपना ही समझता है, यह बात उसकी समझ से परे थी. क्योंकि यहां के हुक्मरानों ने आम लोगों के सामने हिंदुस्तानियों की जो तस्वीर बना रखी थी उसमें सिवाय नफ़रत के और कुछ था ही नहीं. मामू की बातें तो उसे किसी परी कथा सी लग रही थीं. लेकिन मामू की सादगी एवं सच्चाई पर शक करने का तो सवाल ही नहीं था. मामू ने हिंदुस्तानी मुसलमानों के जो हालो हवाल बताये थे और दुनिया के किसी भी मुल्क में मुसलमानों को इतनी आज़ादी, सहुलियतें, हिफाज़त और सलामती हासिल नहीं है जितनी हिंदुस्तान में है के दावे को छाती ठेक कर कहा था. सुनकर उसके दिल में एक हूक सी उठने लगी थी. आज वह अपने अब्बू के हिंद न छोड़ने के दानिशाना फ़ैसले और चाचू की बालिश ज़िद को अपने दिल के तराज़ू में तौल रहा था और अब्बू का पलड़ा ही उसे भारी लगने लगा था. लेकिन तभी दीनी तालीम में सिखाया गया वह सबक़ उसे याद आया कि, "चैनों सुकून के साथ काफ़िरों की हुक्मरानी में रहने की बनिस्बत अपनी पाक सरज़मी पर हज़ारों मुश्किलें सहते हुए भी रहना कहीं बेहतर होता है." इस ख़याल से दिलो-दिमाग को कुछ तसल्ली तो मिली लेकिन एक ही अल्लाताला पर ईमान रखनेवाले एक दूजे के साथ दोयम दर्जे का सुलूक क्यों करते हैं ? इसका खटका तो मन में बना ही रहा. हालांकि उसे याद नहीं आता कि उसने या उसके किसी ख़ानदान वाले ने कभी कोई ऐसा काम किया हो जिससे उनकी वफ़ादारी पर शक भी किया जा सके. हिंदुस्तान के ख़िलाफ़ लड़ी गयी तमाम लड़ाइयों में उसने और उसके भाई, बच्चों ने न केवल मुल्क का साथ ही दिया था बल्कि उनमें बढ़ चढ़ कर हिस्सा भी लिया था.

अरे अशफ़ाक़ ! जरा मेरा थैला तो देना कहां खो गये भाई ? उसे मामू ने अचानक पुकारा तो जैसे वह सोते से जागा. झेंपते हुए उसने मामू को झोला थमाते हुए कहा - मामू दुनिया बदल गयी परंतु आप नहीं बदले. - अब तो पांव क़ब्र में लटक रहे हैं, अब कैसा बदलना ? फिर उन्होंने अपने झोले से कांच की एक शीशी निकाल कर अब्बू की ओर बढ़ाई जिसे अब्बू ने अपने कमज़ोर हाथ में लेकर चूम लिया. किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि आख़िर माजरा क्या है ? तभी अब्बू ने बड़े अदब से शीशी में भरे जल की दो बूंदें अपने मुंह में डालीं तो उनकी आंखों से कई-कई बूंदें ढुलक पड़ीं. उनके चेहरे पर अजीब सा सुकून छा रहा था. यह गंगाजल था. जब उन्होंने हम सबको थोड़ा-थोड़ा पीने को कहा तो सिवा अम्मी के किसी ने छुआ तक नहीं. छोटे असलम ने तो पलट कर कह ही दिया अब्बू यह तो हिंदुओं के अक़ीदे की चीज़ है, हम मुसलमानों के लिए तो यह सुअर के गोश्त की तरह हराम है. तब अब्बू ने झल्ला कर कहा था - ना मुरादों, ना शुक्रों इसी को पी-पी कर तो तुम्हारे बाप-दादाओं का जिस्म बना है. इसको एक बार पी लेने से कोई हिंदू नहीं बन जाओगे ? अरे तुम्हारा तो क्या दुनिया में किसी का भी मज़हब इस आबेहयात से मर नहीं सकता, इसका मुझे पूरा यक़ीन है.

अब्बू के साथ-साथ उनके नेक औ दरियादिल ख़यालात भी दम तोड़ चुके थे, अब चारों तरफ सबके ज़हन में इस्लाम ही रचा बसा था. इतना सब होते हुए भी मुहाजिर का लेबल पूरी तरह से मिटाने में उसका ख़ानदान कभी कामयाब नहीं हो सका था. वह तो भला हो ओसामा बिन लादेन का जिसने जेहाद के नाम पर, इस्लाम के नाम पर कुछ कर गुज़रने का मौका अता फरमाकर सारे मुसलमानों को एक प्लेटफ़ॉर्म पर लाकर खड़ा कर दिया. आज लाहौर बंद के एलान के दौरान उसके बेटों ने अपनी ट्रांसपोर्ट कंपनी में तो हड़ताल रखी ही, पूरे मार्केट वालों को समझा बुझा कर बंद को मुकम्मल तौर पर कामयाब बनाने में भी कोई कसर न उठायी, 'अल्लाह अकबर', 'इस्लाम ज़िंदाबाद', 'लादेन ज़िंदाबाद' के नारे लगाता हुआ लोगों का हुजूम बढ़ा चला जा रहा था. तभी अचानक बख़्तरबंद गाड़ियों से ढेर सारे पुलिस वाले उतरे और आंसू गैस व रबर की गोलियों की बौछार करने लगे. लेकिन जेहादी इसकी परवाह न करके आगे बढ़ते रहे. कुछ नौजवान पुलिस दस्ते पर पत्थर एवं सोडावाटर की बोतलें फेंकने लगे. उसने देखा उसके बेटे एक हाथ-लारी पर खड़े होकर जोर-शोर से नारे लगा रहे थे. तभी एक सनसनाती हुई गोली आकर ठीक उसकी बांयी कनपटी पर लगी. वह गश खा कर गिरने ही वाला था कि उसने देखा उसे किसी की मज़बूत बाहों ने थाम लिया है. यह अफ़ज़ल था, उसका पड़ोसी, जो आज तक उसे मुहाजिर होने के कारण हिक़ारत भरी नज़रों से देखता आ रहा था लेकिन आज उसकी क़ुर्बानी देख कर वह बेहद बेचैन था. यह देख उसे अच्छा लगा. धीरे-धीरे उसकी आंखों के आगे का आसमान धुंधलाकर काला पड़ने लगा, किंतु फिर उसने अपना सारा ज़ोर लगाकर आंखें खोलने की कोशिश की. अफ़ज़ल उसे अपने सीने से चिमटाये कुछ कह रहा था. क्या कह रहा था वह तो वह समझ न पाया लेकिन उसकी आंखों की चमक बता रही थी कि एक अफ़ज़ल ही नहीं सारे पाकिस्तानियों ने उसे मुहाजिर के इल्ज़ाम से बरी कर दिया है. उसने अपने जिस्म की सारी कुव्वत इकट्ठा कर 'इस्लाम ज़िंदाबाद'... बोलने के लिए मुट्ठी बांधी, अपना हाथ ऊंचा किया. तभी उसकी आंखों के सामने अब्बू, अम्मी, घर, गांव, नाव, घाट, गंगा सब घूमते से नज़र आये. उसके मुंह से चीख़ निकल पड़ी, "गंगा मैय्या की जय." फिर उसने इतना ही महसूस किया कि अब तक जिन हाथों ने उसे थाम रक्खा था, उन्हीं ने धम्म से गिरा दिया है.

२१६, उमेदनगर कॉलोनी,
भुज-कच्छ, गुजरात-३७०००१.

मौत की छलांग

ऐसी रौनक़ तो कभी देखी ही नहीं गयी थी इस क़स्बे में - जैसी आज थी.

लोगों को अगर कुछ याद था तो बस 'मंडप मैदान' वहां लगी प्रदर्शनी, जिसे लोग 'मीना-बाज़ार' कहते थे.

आज से शुरू हो रहे एक विशेष रोमांचक खेल की घोषणा ने हफ़्तों से चल रही प्रदर्शनी की एकरसता को दूर कर दिया था. तभी तो आज विशेष हलचल थी, क़स्बे में रौनक़ थी, क़स्बाइयों की रेलमपेल थी.

दूर से ही काठ-सीढ़ी के शिखर पर जलते लाल-बल्ब और लटकते रंगीन बल्बों की तिकोनी लड़ियों को देखकर ही अजीब-सा रोमांच हो रहा था सबमें. भीड़ की आपा-धापी में शामिल लोगों के क़दम ख़ुद-ब-ख़ुद मंजिल की ओर बढ़ रहे थे, क़दम-दर-क़दम तेज़ होते हुए. ...क्षण-क्षण में भरता ही जा रहा था 'मंडप मैदान' का हर ख़ाली हिस्सा.

सुरमई शाम से लेकर गहराती सर्द रात तक के सफ़र और सुरूर के साथ-साथ, मीना बाज़ार की चहल-पहल और ख़रीद-फ़रोख़्त का बाज़ार अपने शबाब पर था. क़रीने से सजी दुकानों और कॉर्नर्स से धीरे-धीरे लोग हटकर रस्सी के उस गोल घेरे के इर्द-गिर्द जमा हो रहे थे जिसके अंदर पानी से लबालब चौड़े मुंह वाला एक कुआं था - 'मौत का कुआं'! कुएं के बगल में कई तारों के सहारे बंधी-सीधी खड़ी काठ वाली, साठ फीट ऊंची सीढ़ी - 'मौत की सीढ़ी' ! सीढ़ी के ऊपर सबसे अंतिम छोर पर जलता एक लाल 'बल्ब'! 'भक-भुक'- संकेत था आज होने वाली एक विशेष प्रदर्शनी का, रोमांचक तमाशे का...!

रह-रह कर मैदान में एक तेज़ घोषणा गूंज रही थी लाउडस्पीकरों से -

- "आ जाओ...आ जाओ...आ जाओ...!" जल्दी कीजिए और देखिए हसीन ज़िंदगी और खौफ़नाक मौत की आंख-मिचौली... आग और पानी के बीच आदमी की ज़िंदगी का हैरतअंगेज़ तमाशा ! आपके लिए, आपके शहर में ज़िंदगी और मौत का कुआं - जो आपके लिए है मनोरंजन और किसी के लिए मौत का फ़रमान... तो देखिए मौत की छलांग...छलांग...छलांग..."!

प्रतिध्वनित आवाज़ों और लाल बल्ब के संकेत से स्फुरित रोमांचित भीड़ जहां रस्सी-घेरे के बाहर खड़ी होकर उस कलाबाज़ खिलाड़ी का बेसब्री से इंतज़ार कर रही थी जो उन्हें "मौत की छलांग" का सनसनीख़ेज़ करतब दिखाने वाला था, वहीं दूसरी ओर आंखमिचौली से उकताया वह जांबाज़ तमाशागर था- 'शाहिद'!

शाहिद !... मध्यम कद-काठी, कसी देह, सांवला आकर्षक चेहरा, घुंघराले बालों वाला शाहिद, आज काले कपड़ों में पूरी तरह सज-संवर कर तैयार खड़ा था - मौत की छलांग के लिए. शाहिद ने अपने चालीस वर्षीय जीवन के बाईस वर्ष इसी सनसनीख़ेज़ कलाबाजी में ही बिताये थे. जगह, समय और उम्र बदलते रहे, मगर भूख और भूख का तमाशा बस सिर्फ़ एक - 'मौत की छलांग'! यानी, जान की परवरिश, भूख की तपिश से बचने की ख़ातिर "मौत की छलांग".

मनोज सिन्हा

ज़िंदगी की ख़ातिर मौत की छलांग - भला यह कौन सा फ़लसफ़ा हुआ ? ... अपनी ज़िंदगी के इतने लंबे सफ़र में शाहिद कुछ प्रश्नों की गुत्थी न जानें क्यों अब तक सुलझा ही नहीं पाया था. हर तमाशे से पहले वे प्रश्न उसके अंतर्मन को कुरेद-कुरेदकर एक टीस दे जाते थे और हर 'मौत की छलांग' के बाद वे ही प्रश्न उसकी बची ज़िंदगी को खीझ और निराशा के किसी दलदल में गहरे तक ढकेल जाते थे.... क्या बाल-बच्चों की ज़िम्मेदारियों से ऊबकर मौत की छलांग लगाना एक तमाशा है या फिर 'छलांग' के बाद बची बेबस ज़िंदगी के प्रायश्चित का नाम है - "मौत की छलांग ?" मानो ये प्रश्न ही कुछ ऐसे ज़हरीले जीव हों जो फ़न काढ़कर खड़े हो जाते थे उसके सामने - गाहे-बगाहे !

आज भी उसी 'मौत की छलांग' के लिए तैयार खड़ा था शाहिद ! ...उन्हीं प्रश्न-सर्पों से घिरा हुआ. टीस दे रहे थे प्रश्नों के डंक ! और वह... इस ला-इलाज टीस से उबरने की कोशिश में, अपनी बीबी और बच्चों के सवालिया भविष्य में अंधेरे सागर में गोते लगाता हुआ, उन्हें जी भर कर देख रहा था - आज फिर तमाशे में जाने से पहले !

शाहिद के मन के किसी कोने में दफ़न अधूरी अभिलाषाएं, स्मृतियों के पंख लगाकर गुज़रे कल के घोसले की ओर उड़ चली थीं चुपके से. यादों के बाग़-बगीचे आज भी हरे थे शाहिद के ज़ेहन में !

❑

तब वह छोटा शाहिद था... नन्हा सा, प्यारा सा अपने अब्बू का लाड़ला ! नज़रें खुलते ही अपने अब्बू, ममतामयी अम्मी और बूढ़े दादू की स्नेहिल छांव में पलता-बढ़ता पाया था, उसने ख़ुद को. टीन के ऊंचे पत्तरों से घिरा उसका घर था और मीना-बाज़ार

की पूरी चहारदीवारी उसके लिए खेल-आंगन ! दादू आकर्षण थे इसी चहारदीवारी के - एक जांबाज़ तमाशागार, 'मौत के छलांग' जैसे ख़तरनाक खेल के ! रोज़ ऊंचे से छलांग लगाया करते थे हज़ारों की भीड़ के सामने. एकदम 'हीरो मैन' थे दादू - यही शाहिद के लिए नाज़ की बात हुआ करती थी और उसके अब्बू... सीधे-साधे एक मेहनतकश मज़दूर, उसी चहारदीवारी के अंदर कभी पत्तरे खड़े करते, कभी हिंडोले खड़े करते, तो कभी हथौड़े चलाते.

शाहिद को वह दिन अच्छी तरह याद है जब वह ज़िंदगी में पहली बार ख़ूब रोया था. वह मनहूस दिन ! हर रोज़ की तरह उस रात भी दादू ने, अपने शरीर पर आग लगाकर हज़ारों की भीड़ के सामने, आसमानी ऊंचाई से छलांग लगायी थी!.. विस्मित चेहरे...! अवाक दर्शक...! एक क्षण का सन्नाटा... और फिर सन्नाटे को दहलाती एक हृदयविदारक चीख़...!

... छप्पाक की जगह 'धड़ाम' की पुरज़ोर आवाज़ ! ...दादू कुएं की जगह, कुएं की मुंडेर पर छितराये पड़े थे. शोर-शराबा, गीत-संगीत सब थम गये थे. अफ़रा-तफ़री मची थी. ख़ून से लाल होता जा रहा था कुएं का पानी, बचा था दादू का क्षत-विक्षत शरीर और कुछ सांसें - वह भी पलक झपकते ही, एक हिचकी के साथ दादू का दम छोड़ गयी थीं. फिर दादू से कभी भेंट न हुई शाहिद की. वरना, उसने तो यह भी सोच रखा था कि दादू के कंधे पर घुड़सवारी करता हुआ सारे वाक़्यात दादू को तफ़सील में बताता -पर 'मिट्टी' के लिए ले जाये गये दादू फिर लौटकर नहीं आये...मासूम शाहिद कई दिन तक सिसकता रहा - ढूंढ़ती रही उसकी नज़र हज़ारों की भीड़ में, दादू को...

कुछ महीने बाद शायद ताजपोशी जैसी ही कोई ख़ुशी थी उस दिन. एक जश्न मनाया गया था चहारदीवारी में. सबके सामने मैनेजर बाबू ने खड़े होकर कुछ कहते हुए अपने हाथों से एक बड़ा-सा लड्डू खिलाया था... और बड़े मालिक ने हाथ मिलाकर गले से लगाया था अब्बू को ! लोगों ने तालियां भी बजायी थीं. अब दादू की तरह, अब्बू भी रोज़-रोज़ 'मौत की छलांग' लगाया करते थे. उसे महसूस हुआ था जैसे दादू की कमी, सिवा 'शाहिद' के, अब किसी को नहीं खलती थी. बल्कि अब्बू ने कई और कलाबाजियां जोड़ ली थीं अपने तमाशे में. लोग अब दादू से ज्यादा अब्बू की तारीफ़ किया करते थे. इसलिए जहां दादू हर तमाशे के बाद पानी से निकलकर, हाथ फैलाकर आठ-दस रुपल्ली से ज़्यादा बख़्शीश नहीं जुटा पाते थे वहीं अब्बू बीस-बाईस तो जुटा ही लेते थे.

समय के अंतराल में जैसे-जैसे शाहिद बड़ा होता गया इस खेल की भयानकता और जोख़िम उसकी नज़रों में छोटे होते गये. उसे अब यह तमाशा एक मज़ाक़ सा लगने लगा था. शाहिद को लगा कि यदि अब्बू को अपना गुरू मानकर थोड़े गुर वह सीख ले तो बीस-बाईस क्या, साठ-सत्तर तो वह अवश्य ही कमा लेगा-

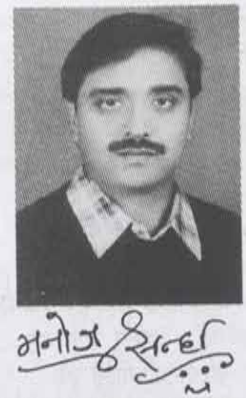

०९ जून १९६३, विज्ञान एवं विधि स्नातक

लेखन : *अनेक मंचित नाटकों का लेखन, कफ़न (मुंशी प्रेमचंद), जामुन का पेड़ (कृश्न चंदर), सहित कई कहानियों का नाट्य-रूपांतरण, आकाशवाणी द्वारा प्रसारित अनेक कहानियां एवं नाटकों का लेखन, दूरदर्शन द्वारा प्रसारित कई धारावाहिक, टेलीप्ले, टेलीफिल्म एवं वृत्तचित्रों के लिए कथा, पटकथा, लेखन.*

प्रकाशन : *विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां, नाटक, कविता, आलेख, समीक्षा एवं टिप्पणियां प्रकाशित. कहानी 'आख़िरी ईंट' (लेखक - चंद्र किशोर जायसवाल) का नाट्य रूपांतरण प्रकाशित, कहानी 'विदाई कांड' का नाट्य रूपांतर प्रकाशनाधीन.*

पुरस्कार : *नाट्यमंचन एवं लेखन के लिए विविध पुरस्कार एवं सम्मान.*

अन्य गतिविधियां : *रंगकर्म, नाट्य लेखन, नाट्य निर्देशन तथा दूरदर्शन के लिए कई धारावाहिक, टेलीफिल्म, टेलीप्ले वृत्तचित्रों एवं संदेश फिल्मों का निर्देशन. अभिनव (सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक) संस्था का संचालन.*

विशेष : *रामवृक्ष बेनीपुरी साहित्य सम्मान तथा रामेश्वर सिंह कश्यप (लोहा सिंह) रंगकर्म सम्मान का संयोजन.*

संप्रति : *व्यवहार न्यायालय सेवा.*

शारीरिक रूप से कमज़ोर होते अब्बू का सहारा बनेगा.

लड़कपन को तो बस एक मामूली परवाज़ चाहिए - फ़ितूर का, फिर तो आकाश भी छोटा पड़ने लगता है. शाहिद के मन-पतंग को पंख भी मिल गये थे, परवाज़ भी मिल गया था और एक दिशा भी !

तय कर लिया था उसने - इस करतब में महारत हासिल करके ही रहेगा - टॉप का खिलाड़ी बनेगा वह. एक रोज़ दिन में उस जगह पर पहुंच गया था, जहां अब्बू रात वाले करतब का रियाज़ किया करते थे. कह ही दिया साफ़-साफ़ उसने सब कुछ

अपने अब्बू से! शाहिद के नेक विचारों को जानकर उत्साह बढ़ाना या ख़ुश होना तो एक तरफ़, बहुत डांटा-फटकारा था अब्बू ने शाहिद को. मगर उससे क्या, वह तो आज अपने पंख तौलकर ही आया था - किसी भी गोते के लिए, हर तूफ़ान का सामना करने के लिए ! उसे गुरू की फटकार मिले या मार... आज से वह भी रियाज़ शुरू करेगा. शाहिद को अपने अब्बू के साथ हुए तसकरे का आख़िरी हिस्सा अब भी याद था और इन्हीं हिस्सों से अंकुरित हुई थीं कुछ बाल-सुलभ अभिलाषाएं !

"यह क्या पागलपन है शाहिद ? रियाज़, तमाशा तेरे वश की बात नहीं. जा पढ़... अपना काम कर..."

"अब्बू मैने फैसला किया है कि..."

"चुपचाप भाग जा वरना मार-मारकर हड्डी-पसली एक कर दूंगा नालायक़...!"

"अब्बू मैं लायक बनकर ही तो दिखाना चाहता हूं !"

बेवक़ूफ लड़के, अगर लायक़ ही बनने का इतना शौक़ है तो साहब-सुबहा बन कर दिखा दुनिया को. यहां तमाशागर बनकर क्या साबित कर लेगा तू ...? दो जून की रोटी का भी सही से ठैर-ठिकाना नहीं है इस धंधे में. ज़िंदगी को हर वक़्त मौत के कुएं में ढकेलकर किसे ख़ुशी देगा तू ? न तेरी औरत ख़ुश रहेगी, न तेरे वालिद-वल्दान !" अचानक संजीदा हो गये थे उसके अब्बू गुस्साते-गुस्साते- "बेटा क्या तुझे अपने दादू की दर्दनाक मौत याद नहीं ?"

इन्हीं बोझिल क्षणों में शाहिद को रौशनी की किरण दिख गयी थी. सहमकर बोला था वह- "पर अब्बू, आपने भी तो वही किया न, जो दादू किया करते थे..."

"यह रास्ता मैंने ख़ुशी से अख़्तियार नहीं किया था शाहिद ! एक मजबूरी थी. घर की, तुम और तुम्हारी बहन की जबाबदेही थी मुझ पर. किसी और काम के लायक तो था नहीं... थोड़े बहुत गुर जानता था इस तमाशे के... फिर मेरे बच्चे, मैंने इस जानलेवा खेल को अपने ख़ानदान का आख़िरी तमाशागर मानकर ही अपनाया था. ताकि मेरी तरह तुम्हें भी किसी ऐसे खेल में बतौर तमाशा शामिल न किया जाय. क्या तुम इतना सब जानकर भी, मेरे ख़्वाहिशों का गला घोंटकर, वह सब करना चाहोगे शाहिद जो मैं कर रहा हूं ?"

शाहिद इस जटिल संवाद का सीधा अर्थ समझा हो या नहीं, मगर इन बातों का मज़मून समझ ही गया था कि अब्बू क़तई नहीं चाहते कि उनका बेटा शाहिद एक खिलाड़ी बने - इस जानलेवा 'मौत की छलांग' तमाशे का. मगर...मगर वह करे भी तो क्या ? कुछ ख़ास करने का वलवला था उसके अंदर ! 'बड़ा' आदमी कोई ऐसे थोड़े न बन जाता है... 'साहब-सुबहा' बनने के लिए रोज़ स्कूल जाना पड़ता है, मोटी-मोटी क़िताबें पढ़नी पड़ती हैं, जमकर पढ़ाई भी करनी पड़ती है...! पर वह पढ़ाई करे भी तो कैसे ? अब्बू का या प्रदर्शनी का कहीं कोई ठैर-ठिकाना तो था नहीं. आज यहां तो कल वहां बस एक ख़ानाबदोश गुज़र-बसर ! न अच्छी तालीम, न अच्छा मदरसा और न ही कोई बेहतर मौलवी - मास्टर ! बस पढ़ाई के नाम पर चंद पुरानी किताबें, मास्टर के नाम पर उस प्रदर्शनी का सबसे ज्यादा पढ़ा-लिखा इंटर-फेल गेटकीपर, जो हफ़्ते-पंद्रह दिनों में आकर समझाने-पढ़ाने से ज्यादा ठेक-ठुकई कर जाता था. उस पर अब्बू की रोज़-रोज़ की झिकझिक -'बेटा पढ़ाई कर...', क्या ख़ाक पढ़ाई करे ? तभी तो आज अपने पंद्रहवें जन्मदिन से अपनी ज़िंदगी को एक नया मोड़ देना चाहता था शाहिद - 'मौत की छलांग' का बेहतरीन खिलाड़ी बनकर स्वयं को क़ाबिल साबित करना चाहता था. पर... यहां तो अब्बू की नाराज़गी, संजीदगी और नसीहतों ने उसके फ़ैसले को बदलने पर मजबूर कर दिया था.

उमंग और उत्साह के सूख गये दरिया को मन-ही-मन ढोता हुआ वह लौट ही चला था कि तभी अब्बू ने बड़े प्यार से पुकारा था उसे - "शाहिद, बेटा इधर आ !"... फिर अपने बहुत क़रीब लाकर पुचकारते हुए कहा था - "बेटा आज तेरा जन्मदिन है न! तेरी अम्मी कह रह थी कि तेरे सारे कपड़े फट गये हैं.... क्या करूं शाहिद, क्या मेरा दिल यह नहीं चाहता कि साहबों के बाल-बच्चों की तरह तेरी भी परवरिश करूं, तेरे लिए भी अच्छे-अच्छे कपड़े ख़रीदूं, क़िताबें ख़रीदूं ! पर क्या करूं... महीने भर तमाशे के बाद मिले रत्ती भर वेतन और हर तमाशे के बाद मिले बख़्शीश के पैसे सिर्फ़ घरेलू ज़रूरतों में ही ज़ाया हो जाते हैं. कुछ बचा भी नहीं पाता हूं जो तुम्हारी, तुम्हारी छोटी बहन नाज़िया या तुम्हारी अम्मी की ख़्वाहिशें पूरी कर सकूं. बड़ा हो गया है न तू ! शायद इन कमियों को समझने लगा है, इसीलिए मेरा हाथ बटाना चाहता है तू - 'मौत की छलांग' लगाकर !" - आवाज़ भी भर्रा गयी थी अब्बू की. झट से उन्होंने अपने चेहरे को नीचे झुका लिया था. मगर शाहिद की नज़रों से अब्बू की डबडबायी आंखें न छिप सकी थीं. आंखों में तैरते आंसुओं के साथ घुल-मिल गये कुछ सपने लिये संयत भाव से फिर अब्बू ने कहा था - "बेटा इसीलिए तो कहता हूं कि इस तमाशे से न तू ख़ुश रहेगा न तेरे बाल-बच्चे. लोगों की तालियां ज़रूर मिलेंगी, वाहवाही भी मिलेगी पर... पर इससे पेट नहीं भरता बेटे. ज़िंदगी की मामूली ज़रूरतें पूरी नहीं होती हैं. यह ज़िंदगी बहुत क़ीमती है बेटा... बहुत क़ीमती ! इसकी क़ीमत कभी कम न हो यही कोशिश कर. यह 'मौत की छलांग' तो एक तमाशा है बेटे... एक जुआ है जो कई ज़िंदगियों को एक साथ मौत के दांव पर चढ़ा देता है... सांसों का, कौड़ी-कौड़ी का मोहताज बना देता है. ऐसे तमाशों को देखना तो बहुत अच्छा लगता है शाहिद, मगर दिखाना ठीक नहीं, समझा !" चेहरे पर उभर आयी दर्द की परछाइयों को गौर से देखा था शाहिद ने. एक हल्की मुस्कुराहट होठें पर स्थिर करते हुए एक ठंडी सांस छोड़कर अब्बू

कह रहे थे उससे -" अच्छा देख, आज के तमाशे से जो भी बख़्शीश मिलेगी, वह सब तेरे नाम है. उस पैसे से नयी क़मीज़-पैंट और अच्छी किताबों का तोहफ़ा दूंगा तुझे तेरे जन्म-दिन का, ठीक है न ! मूक हामी भरता, अब्बू की डबडबायी आंखों का मर्म समझता, शाहिद लौट आया था अपने तंबू में. ... इंतज़ार था उसे गहराती रात का, उस घड़ी का जब उसके अब्बू का 'मौत की छलांग' खेल होना तय था. शाम होते ही उसकी नज़रें बार-बार मौत की सीढ़ी के ऊपर लगे लाल बल्ब के 'भक-भुक' संकेत को तलाश रही थीं.

वह घड़ी भी आयी. बेहिसाब भीड़ भी लगी. काले चमकीले कपड़ों में सजे अब्बू ने सीढ़ी के आसमानी 'फुट रेस्ट' पर खड़े होकर कागज़ के कतरन उड़ाये. हवा का रुख़ और मिजाज़ देखकर सिर पर काला नक़ाब भी डाला - एक फांसीयाफ़्ता ज़िंदगी की तरह. कपड़े पर पेट्रोल छिड़ककर आग भी लगायी और बचे पेट्रोल को नीचे कुएं में डालकर ऊपर से ही जलती हुई मशाल भी फेंकी. अब्बू तो जैसे आग का एक गोला बन गये थे, कुआं भी धधक उठा था शोलों से... और क्षण भर में एक 'बैलेंस' बनाकर कुएं में छलांग लगायी - अब्बू ने. 'धक-धक' कर धड़क उठा शाहिद का दिल ! वैसे तो यह तमाशा नया नहीं था - ना शाहिद के लिए और न ही अब्बू के लिए, मगर पता नहीं क्यों ज़िम्मेदारियों के कांटों से बिंधे अब्बू का इस तरह कूदना देखकर सिहर गया था आज वह अंदर तक. एक अनजाना डर-सा समा गया था... बेसाख़्ता ही हाथ उठाकर वह सलामती की दुआ करने लगा था.

अब्बू, यानि जांबाज़ तमाशागर के आसमानी ऊंचाई से कूदते ही कई सांसें थम गयी थीं. कई आंखें आश्चर्य से फैल गयी थीं. कई कमज़ोर दिल वाले बूढ़े, औरतों के मुंह से विस्मय की चीख़ निकल गयी थी. बच्चे... इस खेल की भयानकता से सहमकर लगभग दुबकते हुए से अगल-बगल में खड़े लोगों का दामन सख़्ती से थाम रखे थे... सभी स्तब्ध, दिल थामे खड़े, अब्बू की शरीर पर नज़रें टिकाये... अब्बू ज़मीन की तरफ आ रहे थे...

... फिर छप्पाक ! तालियों की ज़ोरदार आवाज़ ने इस भयानक तमाशे की सफलता को शाबासी दी. कितनी फुसफुसाहटों ने उसके अब्बू के इस हैरतअंगेज़ कारनामे की प्रशंसा में 'हिम्मतवाला', 'जांबाज़', 'बेहतरीन कलाबाज़' और न जाने क्या-क्या कहा था. इन फुसफुसाहटों, तमाशबीनों की आंखों में अब्बू के प्रति सराहनीय चमक और उमड़ी भीड़ की लगातार तालियों की गड़गड़ाहट को देख-सुनकर शाहिद को यह दिलासा हो रहा था कि आज बख़्शीश के पैसे से उसके लिए कमीज़-पैंट और किताबों के अलावे घर के ज़रूरी ख़र्च की चीज़ें भी आ जायेंगी.

अब्बू 'मौत के कुएं' से निकलकर, रस्सी-घेरे के चारों ओर खड़े दर्शकों से, हाथ फैलाकर बख़्शीश मांग रहा था. अचानक

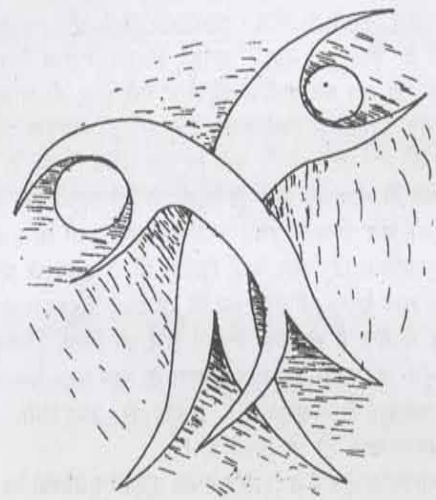

तालियां थम-सी गयीं, फुसफुसाहटें रुक गयीं, प्रशंसित भाव न जाने कहां गायब हो गया - दर्शकों की आंखों से. भीड़ तो जैसे काई की तरह फटने लगी. अचानक क्या हो गया लोगों को - सब नज़रें चुराने लगे थे, अब्बू की नज़रों से. उससे पहले कि अब्बू की, बख़्शीश के लिए फैली हथेली किसी के सामने आती, सभी मुंह फेरकर खिसकने लगे थे. अब्बू के तमाशे ने जहां कई शब्द-अलंकार और प्रशंसा बटोरे थे, वहीं अब्बू अब स्वयं में एक तिरस्कृत तमाशा दिख रहा था लोगों के सामने. हां, कुछ ऐसे हाथ ज़रूर थे, जिसने तालियों के साथ-साथ चंद सिक्के और नोट भी डाले थे - प्रशंसा में. भावनाओं की क़द्र करने वाले कुछ 'गार्जियन्स' ने अपने बच्चों के हाथों से सिक्के या नोट दिलवाकर एक कुशल खिलाड़ी का सम्मान भी किया था. कुछ ऐसे भी दर्शक थे जिन्होंने अब्बू की ओर सिक्कों को इस तरह फेंका था जैसे यह कोई बख़्शीश नहीं, एक ख़ैरात हो उस खिलाड़ी पर, जो आज अपनी मौत से बच गया था - मानो एक खीझ ! कुछ ऐसे तमाशबीं भी थे उसी भीड़ में, जिन्हें भीख मांगते हाथ बहुत सुकून देते थे - चंद सिक्के उन्होंने भी उछाले थे... बेबसी की ज़मीन पर गिरे सब्र के सिक्के को खोज-खोज कर उठा रहा था, शाहिद का अब्बू !

इतना ख़तरनाक तमाशा, इतनी तालियां, दर्शकों का बदलता रुख़, तिरस्कृत व्यवहार और उसके अब्बू की यह दुर्दशा! मन भिन्ना उठा था शाहिद का. शाहिद की प्रतीक्षित आकांक्षाएं और कोमल भावनाएं उस वक़्त चूर-चूर हो गयीं जब पानी से तर-बतर ठिठुरते अब्बू के चेहरे पर दरिद्रता के भाव भी उभर आये थे. वह अपनी कांपती हथेलियों को झटक-झटककर, सबके सामने बार-बार जाकर, हाथ फैलाकर भीख मांग रहा था. आज शाहिद को दिया गया वादा ही मक़सद था, आज के इस तमाशे का - यह याद था अब्बू को भी. शायद तभी तो शाहिद से नज़र मिलते ही अब्बू की नज़रें ख़ुद अपमानित होकर, हथेली पर पड़े चंद

सिक्कों और रुपयों के बीच गड़कर रह जाती थीं. वह ज़रूरत भर पैसे के लिए पुनः मुड़कर दर्शकों के सामने हाथ फैलाकर-घूमता ही जा रहा था. शाहिद को लगा जैसे अब्बू की आंखों की मूक याचना दर्शकों से गिड़गिड़ाकर कह रही हो कि इस नक्कारे खिलाड़ी की मौत पर न सही, बची हुई एक ग़रीब ज़िंदगी के नाम, बाल-बच्चों के नाम पर कुछ तो ख़ुशी से देते जाओ. पर इससे दर्शकों को भला क्या ? उधर भयानक तमाशा था तो इधर से जोरदार तालियां थीं. उधर बची ज़िंदगी थी तो इधर से प्रशंसा-स्वर थे. उधर थरथराती हथेलियां थीं तो इधर तिरस्कार के दंश थे. फिर ये बीच में बख़्शीश क्यों ! और जो मिला, जितना भी मिला बहुत था, तरस था सामाजिकता के नाम पर. सम्मान या हौसला-अफ़ज़ाई किस बदले में ?... कोई मरे, कोई जिये... सब अपना-अपना काम ही तो करते हैं !

यानी, अब्बू की बची ज़िंदगी की कांपती हथेलियों पर मात्र तेईस रुपये पच्चीस पैसे ! शाहिद का अंतस तक दरक गया था. कलप उठा था वह. अब्बू की हर बात सच लग रही थी उसे. तमाशा सीखना तो दूर उसका बालमन तो चाह रहा था कि अभी तुरंत हाथ पकड़कर अपने अब्बू को इस फालतू नौकरी से निजात दिलवाकर कहीं दूर ले जाये. ताकि रोज़-रोज़ की घरेलू ज़रूरतों के लिए, ऐसे वादों के लिए, ऐसे जोख़िम भरे कारनामें न करने पड़ें, मौत को अपने हाथों ही गले न मढ़ना पड़े अब्बू को. उसे ज़िंदगी की क़ीमत मालूम हो गयी थी. बस यही रात थी जब शाहिद ने एक निर्णय के तहत, एक अलग रास्ता चुन लिया था. शाहिद के हर क़दम अब उस प्रदर्शनी से निजात पाने के लिए उठ रहे थे. वह मन लगाकर पढ़ाई क़रता जा रहा था... आगे बढ़ता जा रहा था.

मगर होता तो वही है जो बदा होता है. कोई कोसों दूर भाग ले, मगर समय इंसान को खींचकर वहीं ले आता है जहां हाथों की लकीरों का आगाज़ और अंजाम पहले से ही तयशुदा होता है.

कुछ ऐसा ही हुआ था शाहिद के साथ. न जाने ज़िंदगी ने कहां पलटा खाया कि सारे सपने चूर-चूर होकर बिखर गये, दौड़ की मंज़िल खो गयी. जिस तमाशा से नफ़रत सी हो गयी थी, आख़िर उसे ही अपनाने पर मजबूर हो गया था शाहिद - अपनी विधवा अम्मी की रोज़ाना बीमारी, नाज़िया की शादी और पारिवारिक ज़िम्मेदारियों के कारण. इस प्रदर्शनी से बाहर निकलकर किसी ऑफिस का चपरासी भी बन सके, इतनी तालीम भी तो हासिल न कर पाया था शाहिद. भूख और मुफ़लिसी की ज़िंदगी से तंग आकर, 'मीना-बाज़ार' वालों के रहमो करम पर, वह रफ़्ता-रफ़्ता "मौत की छलांग" तमाशे का बेहतरीन खिलाड़ी बन गया था. इस बीच हमदर्दी की सहलाहट लिये ज़ैनब भी आ गयी थी उसकी ज़िंदगी में. जगह-समय और उम्र बदलते रहे.... और इसी बदलते मौसम ने उसे भी एक तमाशा ही बना दिया था.

❑

काली, चमकीली पोशाक में कसा-संवरा खड़ा था शाहिद 'मंडप-मैदान' में लगी प्रदर्शनी के टीन-पतरे वाली खानाबदोशी खोली में, रोमांचित, बेसब्र भीड़ से बेख़बर - रोज़-रोज़ की 'मौत की छलांग' के लिए.

यादों के झुरमुट से वापस लौटकर आज के धरातल पर गुज़रे वक़्त का हिसाब कर रहा था शाहिद - दादू से लेकर आज तक. आख़िर क्या अरज लिया था इस परिवार ने, इस अंतराल में-शोहरत ! ...इज्जत, जायदाद-क्या !

पीछे एक भयानक अंधेरा पसरा पड़ा था, बगल में खाट पर हड्डी की ठठरी बनी अम्मी थीं और सामने ज़ैनब थी, ज़ैनब की गोद में एक वर्षीय शबाना थी और ज़ैनब के ही पांव से लिपटा खड़ा चार वर्षीय आफ़ताब था. यही परिवार था शाहिद का.

आज वह एक मज़बूर शाहिद था ख़ूबसूरत ज़ैनब का. न जाने क्यों ऐसे वक़्त में ज़ैनब की सारी ख़ूबसूरती निचुड़-सी जाती थी. शाहिद हज़ारों बार इसकी शिकायत कर चुका था- 'बेगम इस तमाशे में जाने से पहली मैं वही ख़ूबसूरत चेहरा देखना चाहता हूं जैसी आप हर सुबह दिखती हैं.' मगर ज़ैनब का भविष्य तो उस तमाशे से जुड़ा रहता था - बूंद-बूंद सूखती थी वह शाहिद के साबुत लौटने के इंतज़ार में. शबाना छोटी थी. काले कपड़ों में देखकर खिलखिलाती रहती थी. आफ़ताब तो बहुत नटखट था, मगर ऐसे वक़्त में वह भी शाहिद से दूर होकर, अपनी अम्मी के दामन से लिपटकर किसी शिकायत भरे लहजे में अपनी ख़ाली-ख़ाली आंखों से घूरा करता था - शाहिद को ! और शाहिद ! ... एक बेबस शौहर और अभागा बाप - ठीक अपने अब्बू की तरह, जो बाल-बच्चों की ख़्वाहिशें तो दूर, रोज़मर्रा की घरेलू ज़रूरतों को पूरा कर पाने में भी अक्षम था. उसकी भी वही दिनचर्या थी, वही खेल था. वह भी हर रोज़ अपने अब्बू की तरह परिवार की ऊंची आसमानी ज़िम्मेदारियों के 'फुट रेस्ट' से, अपने शरीर पर उम्मीदों के 'पेट्रोल' छिड़क कर मजबूरियों की आग में लिपटा, ज़िंदगी रूपी 'मौत के कुएं' में कुएं के 'भूख' रूपी धधकती ज्वाला के बीच छलांग लगाया करता था. कुएं की 'आग' उसके पेट में समा जाती थी जैसे, और वह तमाशा ख़त्म होते ही, एक भिखारी-सा बना लोगों के सामने रहम और शुक्रगुज़ारी मांगा करता था. लाख न चाहते हुए भी, बख़्शीश मांगते शाहिद के चेहरे पर दरिद्रता उभर ही जाती थी, आंखें मूक होकर चीख़ने-गिड़गिड़ाने लगती थीं. उसके कांपते हाथ भी थम-थमकर सिक्कों को उछालते हुए झटकने से लगते थे - ठीक उसी तरह जिस तरह अब्बू के हुआ करते थे.

दादू...अब्बू... और अब शाहिद !

न चाहते हुए भी शाहिद अपने ख़ानदान का तीसरा पुश्त था जो "मौत की छलांग" का जांबाज़ तमाशागर था. साहब-सुबहा बनना, प्रदर्शनी से निजात पाना तो दूर, आज उसकी ख़ानाबदोश ज़िंदगी ने इस क़स्बे में ला पटका था, इसी 'मंडप-मैदान' में जहां लोग बेसब्री से उसके तमाशे का इंतज़ार कर रहे थे.

हर घोषणा - "मौत की छलांग-छलांग ! आइए...आइए..." के साथ-साथ 'मीना-बाज़ार' के अंदर दर्शकों की उत्सुकता भी बढ़ती जा रही थी. लोगों की भीड़ भी चारों तरफ से खिसककर, रस्सी-घेरे के चारों ओर सिमट गयी थी. मौत की सीढ़ी के छोर पर लगे लाल बल्ब जल-बुझकर इंतज़ार की घड़ियों की समाप्ति की सूचना दे रहे थे. 'विशेष खेल' का तयशुदा वक़्त भी क़रीब ही आ पहुंचा था. सिर्फ़ एक लाउडस्पीकर की घोषणा को छोड़ बाकी सारे संगीत, शोर-शराबे थम-से गये थे. लगा जैसे दर्शक ही नहीं, बल्कि आस-पास का वातावरण भी दिल थामकर आनेवाली घड़ियों का, होने वाले विशेष तमाशे का इंतज़ार कर रहा हो.

तभी एक तेज घोषणा और तालियों की गड़गड़ाहट ने उसी रस्सी-घेरे के अंदर शाहिद का गर्मजोशी से स्वागत किया था - "मौत की छलांग" का बेहतरीन, जांबाज़ खिलाड़ी के रूप में. घेरे के चारों ओर खड़े बेहिसाब दर्शकों का बौनापन, तमाशाइयों की इन जोशीली तालियों को पीटती हथेलियों का खोखलापन, तिरस्कार और उदासीनता के विष-बुझे प्रशंसनीय शब्दों के यथार्थ को ख़ूब समझता था शाहिद भी...

लोगों की भीड़ में अब भी उसकी नज़रें दादू को एक बार ज़रूर तलाशती थीं, मगर जेहन से निकलकर आंखों के सामने अनायास ही अब्बू का संजीदा चेहरा सामने आ जाता था. गूंजने लगते थे अंतस में वही वाक्य - 'लोगों की तालियां ज़रूर मिलेंगी... वाहवाही भी मिलेगी, मगर इन सबसे पेट नहीं भरता बेटा... यह 'मौत की छलांग' तो एक तमाशा है बेटे, एक जुआ जो कई ज़िंदगियों को एक साथ मौत के दांव पर चढ़ा देता है...सांसों का, कौड़ी-कौड़ी का मोहताज़ बना देता है...यह ज़िंदगी बहुत क़ीमती है शाहिद....!'

शाहिद इन बातों का मर्म समझकर स्वयं में ही हामी भरता हुआ सिर हिलाने लगा था. दरक उठा था मन का हर कोना - अतीत, वर्तमान और भविष्य की कई अनुभूतियां, और कई संवेदनाएं, आंखों में एक दरिया बनकर लरज उठे थे. अनायास नम हो गयी आंखों को छिपाने के क्रम में दोनों हाथ उठाकर दर्शकों का अभिवादन करने लगा था वह... घेरे के अंदर चारों ओर घूम-घूमकर ! भीड़ ने भी शोर मचाकर, तालियां बजा-बजाकर उसका जोश बढ़ाया था. ...और आख़िर में, एक फीकी मुस्कुराहट बिखेरकर हमेशा की तरह ऊंची सीढ़ी चढ़ने लगा था शाहिद - एकबारगी मौत से बचकर तिल-मिल मरने के लिए, रोज़-रोज़ की "मौत की छलांग" के लिए...!

मायाकुंज ओकनी, हजारीबाग (झारखंड) - ८२५३०१

ग़ज़लें

केशव शरण

अंजोरेगा तिमिर-मर्दन करेगा,
कहीं जुगनू भी परिवर्तन करेगा.

वे देवी-देवता हैं दें न दें अब,
मगर ये भक्त है अर्चन करेगा.

नयन जलते हैं धूपम के धुवें में,
कब अपने इष्ट का दर्शन करेगा.

कहीं पत्थर की मूरत तो नहीं है,
हृदय अपना जिसे अर्पन करेगा.

सुखों के स्वप्न ले लेंगे रतन सब,
हवस का हाट है निर्धन करेगा.

तृषाओं की अग्नि में राख है तन,
नदी की धार में तर्पन करेगा.

महाभारत के अनुभव जी रहा जो,
कहां से रास का वर्णन करेगा.

एस २/५६४ सिकरौल, वाराणसी-२२१ ००२

साहिल

आप ही कहिए मेरा बोलना ज़्यादा तो नहीं,
जो पूरा हो न सके मैं वो ही वादा तो नहीं.

वर्ना क्यों देख के कतराती है बस्ती मुझ को,
सोचता हूं किसी शतरंज का प्यादा तो नहीं.

लोग क्यों मुझ को मुकद्दर का धनी कहते हैं,
एक भी कतरा मेरे जाम में बादा तो नहीं.

दर्द - अफसुर्दगी - वीरानी - उदासी - पीड़ा,
एक लम्हा भी मेरी ज़ीस्त का सादा तो नहीं.

लौट कर आया हूं मैं तेरे शहर में 'साहिल',
तुझ से मिलने का मेरा कोई इरादा तो नहीं.

द्वारा जे. एम. बक्सी एंड कं.,
बंदर रोड, वेरावल-३६२ २६५

कहानी

स्वेटर

विमल पांडेय

बाहर अभी उजाला है. हल्का-हल्का उजाला जो अभी थोड़ी देर में अंधेरे की शक्ल लेना शुरू कर देगा. मां रसोई में अभी भी कुछ खटपट कर रही है जबकि उसे अच्छी तरह पता है कि दोनों सूटकेस और बैग पैक हो चुके हैं और अब कोई भी चीज़ रखने की जगह नहीं.

वह कुर्सी पर आराम की मुद्रा में बैठा है. सामने अभिजीत पलंग पर बैठा है. पापा दरवाज़े पर टहल रहे हैं मानो किसी चीज़ का इंतज़ार कर रहे हों. वह कभी बाहर की ओर देखता है, कभी किचेन की ओर, कभी अभिजीत की ओर. सभी मानो किसी चीज़ का इंतज़ार कर रहे हैं, शायद घड़ी की सुइयों के एक निश्चित जगह पर पहुंच जाने का... पापा बाहर टहलते-टहलते ही उसे बीच-बीच में देख ले रहे हैं जैसे उन्हें यक़ीन ही न हो कि वह इसी घर में कुर्सी पर बैठा हुआ है. थोड़ी देर बाद वे अंदर आते हैं.

'विक्रांत का पता और नंबर कहां रखा है ?'

'डायरी में'. वह जैकेट की जेब थपथपाता है.

'कहीं दूसरी जगह भी लिख लो, अगर ये डायरी खो गयी तो...'

थोड़ी देर खड़े रहते हैं, फिर बरामदे में जाकर टहलने लगते हैं. मां एक डब्बे में कुछ लेकर आती है.

'इसे बैग की साइड वाली पॉकेट में जगह बना कर रख लो.'

'क्या है ये...?' वह डब्बे को बिना थामे पूछता है.

'रास्ते में खाने कें लिए मठरियां....'

'मां, मैंने बताया ना कि प्लेन में खाना मिलता है.' वह झुंझला जाता है.

'... पर ये खाना थोड़े ही है. थोड़ी-थोड़ी देर पर निकालकर खाते रहना.' मां थोड़ी सहम जाती है.

'मां, तुम भी....'

अभिजीत उठकर मां के हाथ से डब्बा ले लेता है.

'लाओ आंटी, मैं रख देता हूं. दो चार अपनी जेब में रख लेता हूं और बाक़ी बैग में...'

'हां बेटा, ले रख दे.'

पापा फिर अंदर आते हैं.

'बेटा, वहां जाकर अपना सब हिसाब-किताब देख कर मुझे फोन करना और भी पैसों की ज़रूरत होगी तो बताना; पढ़ाई में ध्यान लगाना, पैसों की कोई फ़िकर मत करना...'

उसे पता है पापा की आदत है ये. जिस चीज़ की सबसे ज़्यादा कमी होती है, उसे ही सबसे ज़्यादा उपलब्ध दिखाने की कोशिश करते हैं.

अभिजीत चुपचाप बैठा मठरियां खा रहा है. ये इतना चुप तो कभी नहीं रहता. बीच-बीच में उसे देख ले रहा है और मुस्करा दे रहा है. जैसे उसका पढ़ाई करने ऑस्ट्रेलिया जाना एक बहुत मामूली सी बात हो और मठरियां खाना दुनिया का सबसे ज़रूरी काम हो.

अभी तीन घंटों बाद वह फ्लाइट में होगा. अकेला... सभी से दूर. मां-पापा से, दोस्तों से, इस मुहल्ले से, इस शहर से, इस देश से....

थोड़ी देर में अनुज भी आ जाता है.

'सब तैयार है न ?' वह अभिजीत से पूछता है.

'हां, हां सब तैयार है. बस...निकलते हैं.' अभिजीत इत्मीनान से एक मठरी अनुज की ओर बढ़ा देता है.

रोज़ का दिन होता तो अनुज इतनी शांति से एक मठरी लेकर खाने लगता ? अभिजीत के हाथ से दूसरी भी छीन लेता और अभिजीत उसे छीनने के लिए उसकी टांगों में हाथ डाल कर गिरा देता और मठरियां छीनने लगता. मां हमेशा की तरह दोनों की तरफ देखकर हंसती और कहती- 'अरे लड़ो मत बेटा, अभी और भी मठरियां बची हुई हैं.'

मगर अनुज एक मठरी आराम से खा रहा है. मां सोफ़े पर बैठकर एकटक उसकी ओर ही देखे जा रही है. वह मुस्कुरा देता है.

'क्या है मां ऐसे क्यों देख रही हो ?'

'अं...हां...अपने खाने पीने का बहुत ख़्याल रखना. रात को दूध ज़रूर पीना और फ़ोन करते रहना. पढ़ाई पर ध्यान देना. चिट्ठी ज़रूर डालते रहना.'

'अरे आंटी, अब चिट्ठी-विट्ठी कौन लिखता है. यह हर दो-तीन दिन पर हमें ई-मेल करता रहेगा और हम आकर आपको इसकी ख़बर देते रहेंगे.' अनुज कहता है.

'जुग-जुग जिओ बेटा'.

वह अनुज की ओर प्रश्नवाचक निगाहों से देखता है. अनुज भी कुछ बताने के लिए उसकी तरफ देख रहा है पर मां की उपस्थिति की वजह से दोनों ख़ामोश हैं. वह अभिजीत की ओर देखता है.

अभिजीत उसकी आंखों का इशारा समझ जाता है. वह उठकर मां के पास चला जाता है.

'आंटी, वह नमकीन वाली गुझिया दो ना एक...'

'जा बेटा, उस सफ़ेद डिब्बे में हैं, निकाल ले...' मां वहां से बिलकुल उठना नहीं चाहती.

'नहीं आंटी प्लीज़ आप निकाल के दो.'

'...अच्छा रुको...लाती हूं.' मां धीरे से उठकर रसोई की तरफ चली जाती है.

अनुज लपक कर उसके बिल्कुल पास पहुंचता है.

'क्या हुआ ?' वह बहुत बेचैन दिखता है.

'वह सीधा एअरपोर्ट पर आयेगी.' अनुज बताता है.

'यार, यहां आ जाती तो मैं नीचे जाकर मिल आता. एअरपोर्ट पर तो पापा भी होंगे. क्या बोलकर परिचय कराऊंगा उसका...?'

'बोल देना, दोस्त है.' अनुज राय देता है.

'हां पर...फ़ेयरवेल किस नहीं ले पायेगा पापा के सामने.' अभिजीत मुस्कुराता हुआ कहता है.

'अरे यार, वो बात नहीं...अभी तक मां-पापा को कुछ नहीं बताया जो अब क्या जाते वक़्त.... बाद में बताऊंगा, सीधे फाइनल डिसीजन के समय...' वह कुछ सोच में पड़ जाता है.

'सुन, तू पापा को मना कर दे एअरपोर्ट चलने के लिए. कुछ भी बोलकर समझा ले. बोल दे कि दो लोग तो जा ही रहे हैं...' अभिजीत आइडिया देता है.

'हां, शायद यही ठीक रहेगा.' वह सोचते हुए बुदबुदाता है.

मां गुझिया रखकर बाहर पापा के पास चली गयी है.

दोनों आपस में बातें कर रहे हैं. या अब अकेले सिर्फ़ एक दूसरे के साथ रहने का अभ्यास....

पापा फिर अंदर आते हैं.

'ठंड से बचकर रहना. सुना है वहां ठंड ज़्यादा पड़ती है. हमेशा मफ़लर लगा कर रहना. ठंड कानों पर ही सबसे पहले आक्रमण करती है. कान हमेशा ढके होने चाहिए. ये नहीं कि फ़ैशन में बाल न बिगड़ें, इसलिए मफ़लर ही न लगाओ. स्वविवेक से काम लेना. वहां कोई देखने नहीं आयेगा. वह तुम्हारा घर नहीं मेलबर्न है.'

पापा पिछले दिनों से हर बात में घुमा फिरा कर मेलबर्न का ज़िक्र ज़रूर ले आते हैं. जैसे पूरी तस्दीक़ कर लेना चाहते हैं कि वह वाक़ई इतनी दूर जा रहा है.

पापा बाहर जाकर फिर टहलने लगते हैं. मां बाहर कुर्सी पर बैठी हैं.

'...जी'. इतनी बातों के जवाब में वह एक शब्द बोलता है जो बाहर पसर रहे अंधेरे में गुम हो जाता है.

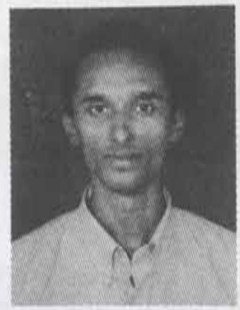

२० अक्तूबर १९८१, वाराणसी;
विज्ञान स्नातक, पत्रकारिता पाठ्यक्रम में अध्ययनरत.

लेखन *: वर्ष २००४ से कहानी लेखन में सक्रिय. अब तक 'साहित्य अमृत', 'वागर्थ', 'नया ज्ञानोदय', 'कथन' आदि पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित.*

स्थायी पता *: प्लॉट नं. १३०-३१, मिसिरपुरा, लहरतारा, वाराणसी-२२१ ००२.*

'आज रोज़ इतनी ठंड नहीं है.' अनुज कहता है.

'हां, बल्कि मुझे तो गर्मी लग रही है.' वह बोलता है.

'वह तो लगेगी ही, तूने स्वेटर और जैकेट दोनों पहन रखी हैं. मुझे देख...' अभिजीत उसे अपना हाफ स्वेटर दिखाता है.

'अरे पापा ने ज़बरदस्ती...'

'तो पापा के सपूत, अब तो उतार दे. पापा बाहर हैं. उतार कर जैकेट की चेन बंद कर ले. उन्हें क्या पता चलेगा.' अभिजीत राय देता है.

वह जैकेट उतार कर स्वेटर उतार देता है. फिर जैकेट पहन कर उसकी चेन बंद कर लेता है.

'मैं सोच रहा था, ये स्वेटर न ले जाऊं.' वह स्वेटर को तह करते हुए कहता है.

'सही सोच रहा है यार. इस पुराने स्वेटर को ले जाकर क्या करेगा ? तीन तीन अच्छे स्वेटर तो हैं ही तेरे पास...' अनुज समझाता है.

'मगर पापा देख लेंगे तो उन्हें बुरा लगेगा. वह ख़ुद यह स्वेटर मेरे लिए नेपाल से लाये थे.' वह हिचकिचाता है.

'अभी नहीं देखेंगे ना ? ला, मुझे दे. बाद में देखेंगे तो सोचेंगे ग़लती से छूट गया.' अनुज स्वेटर तह करके तकिए के नीचे रख देता है.

फिर तीनों अचानक चुप हो जाते हैं. अनुज व अभिजीत दोनों उसकी ओर देखकर मुस्कराते हैं.

'कुछ कह रही थी ?' वह भी मुस्कराता है.

'नहीं, कुछ ख़ास नहीं. बस यही कि जाते ही अपना पोस्टल एड्रेस उसे मेल कर देना. वह जो स्वेटर तुम्हारे लिए बुन रही है उसे कूरियर करेगी. कह रही थी बहुत सारी बातें हैं जो तुमसे एअरपोर्ट पर करेगी. मैंने कहा मुझे बता दो, मैं तुम्हें बता दूंगा तो नाराज़ होने लगी...' अनुज कुटिल मुस्कान मुस्कराता है.

'साले, तुझे क्यों बतायेगी ?' वो बातें तू सुन कर क्या करेगा. तू जाकर सौम्या से क्यों नहीं वो बातें करता ?' वह भी मुस्कराता है.

'यार, वह न तो मुझे घास डालती है न मेरी डाली घास खाती है. उससे क्या बातें करूं. मुझे तो तेरी कविता ही पसंद है.' अनुज ढीठता से हंसता है.

वह मुस्कराता है. वह जानता है कोई और दिन रहता तो सौम्या नाम सुनते ही अनुज दिल पर हाथ रखकर सारी बातें धीरे-धीरे नाटकीय अंदाज़ में कराहते हुए कहता. वह भी उसकी ज़बान से कविता का नाम सुनते ही उस पर लातें चलाने लगता. पर आज की बात दूसरी है आज उनके पास वक़्त नहीं है. आधे घंटे के भीतर वे एअरपोर्ट के लिए निकल लेंगे. उससे पहले यारों के बीच होती रहनी वाली बेवकूफ़ियों को रिवाइन्ड करना अच्छा लग रहा है.

पापा, मां के साथ फिर अंदर आते हैं.

'अब निकलते हैं बेटा, कहीं पहुंचने में देर न हो जाये.'

'अरे अंकल, अभी तो टाइम है.' अनुज कहता है.

'अरे भई, ट्रैफिक जैम का कोई भरोसा है क्या ? कभी भी लेट करा सकता है.' मां भीगी आंखों से उसे देखती है.

'तेरे जाने के बाद घर एकदम सूना हो जायेगा.' लगता है मां रो देगी.

'कम ऑन आंटी, हम घर को सूना होने देंगे तब तो...' अभिजीत मां के कंधे पर हाथ रखता है. मां उसका गाल थपथपा देती है.

'चलो बेटा चलो, अब निकलते हैं...कहीं देर न हो जाये.' पापा पास आकर खड़े हो जाते हैं. उसे पापा पर इसी वजह से गुस्सा आता है. जिस बात को एक बार मुंह से निकाल देते हैं, उसके पीछे ही पड़ जाते हैं.

- 'चलो बेटा, आओ अनुज...' उसके सोचने भर में पापा एक बार और अपनी बात दोहरा देते हैं और एक बैग उठाने का उपक्रम करते हैं.

- 'अरे अंकल, आप कहां परेशान होंगे ?... हम हैं ना. आप आराम कीजिए.'

अनुज कहता हुआ बैग उठा लेता है. अभिजीत दोनों सूटकेस उठा लेता है.

- 'अरे नहीं बेटा, मैं भी चलता हूं.' पापा परेशान दिखने लगते हैं.

- 'छोड़िए अंकल, डॉक्टर ने वैसे भी ज़्यादा दौड़ने धूपने से मना किया है आपको. आप यहीं रहिए. हम हैं ना...' कहता हुआ अभिजीत बाहर निकल जाता है. पीछे पीछे अनुज भी.

- 'डॉक्टर ने दौड़ने को मना किया है भई. मुझे दौड़ते हुए थोड़े ही चलना है. ...चलता हूं मैं भी...' पापा उसके कंधे पर हाथ रखते हुए एक उदास हंसी हंसते हैं जो इस उदास शाम को और उदास कर जाती है.

- 'रहने दीजिए पापा, आप बेकार परेशान होंगे.' वह पापा के पैर छूता है, फिर मां के.

- 'बेटा, माता के पैर छू लो.' मां, दुर्गा की शीशे में मढ़ायी तस्वीर की ओर इशारा करती है.

वह आगे बढ़कर दुर्गा की तस्वीर को प्रणाम करता है. जिसके शीशे में पापा की परछाईं दिखती है. वह बाहर आ जाता है. पापा उम्मीद भरी आंखों से उसे देखते रहते हैं. मां उसे दही खिलाती है. वह जल्दी से दही खाकर निकल जाता है.

दोनों घर से निकल कर सड़क पर आ जाते हैं. वह ख़ुद को ऐसे मक़ाम पर पा रहा है जहां एक ख़ुशी का एहसास इसलिए दिल में उमड़ नहीं पा रहा है क्योंकि कुछ छूट जाने का ग़म उस पर हावी होता जा रहा है. अपने दोस्त अपनी जगह, अपना माहौल... एक नयी दुनिया में जाने की ख़ुशी पता नहीं क्यों उतनी शिद्दत से महसूस ही नहीं हो पा रही है.

करीब सौ मीटर चलने के बाद अनुज सिगरेट जलाकर दोनों को एक एक थमा देता है. दोनों सिगरेट फूंकते हुए ऑटो स्टैंड की तरफ़ जाने लगते हैं.

- 'आज सुबह मनु के घर पुलिस की रेड पड़ी थी.' अनुज सिगरेट का धुंआ छोड़ता हुआ उसे बताता है.

- 'हां, उसके डैडी बिजनेस की आड़ में कुछ ग़लत धंधा करते थे.' अभिजीत बोलता है.

उसका मन सुबह से ही भारी हो रहा है. वह अपनी बीती ज़िंदगी और आने वाली ज़िंदगी के बारे में सोच रहा है. अभिजीत की बातें सुनकर उसे अपना मन डूबता सा लग रहा है. वे दोनों एक बार भी उसके चले जाने के बाद के बारे में बात नहीं कर रहे हैं. वे भी तो उसके बिना अकेले हो जायेंगे. वह कितना मिस करेगा इनको...

'अच्छा सुन, वहां की लड़कियां बड़ी फ्रैंक होती हैं. दो चार पट जायें तो बताना. हम भी आई ई एल टी एस ट्राइ कर लेंगे. क्यों अभि ?' अनुज खी-खी करके हंसने लगता है.

वह भी मुस्करा देता है. अभिजीत एक बार उसकी तरफ़ देख भर लेता है. वे कितनी सफ़ाई से दिल दुखाने वाली बातें नहीं करना चाहते हैं.

'मैं वहां तुम लोगों को बहुत मिस करूंगा...' वह भरी भरी आवाज़ में कहता है. अभिजीत उसकी हथेली को अपनी हथेली

में पकड़ कर दबा देता है.

'अरे कभी-कभी उसे भी मिस कर लेना जो अपना प्यार स्वेटर की शक्ल में भेजने वाली है...' अनुज अपनी आदत के अनुसार भावुक होने के बावजूद बात को हंसी में उड़ा देता है.

'अंकल आ रहे हैं. पीछे पलटने से पहले सिगरेट फेंक दो.' अभिजीत धीरे से फुसफुसाता है.

वह सिगरेट फेंककर पलटता है. पापा लगभग दौड़ते हुए आ रहे हैं. वह आगे बढ़कर सड़क पार करता है और उनके पास पहुंचता है.

'क्या बात है पापा ? आपके लिए दौड़ना नुकसानदायक है, आप जानते हैं, फिर भी...?' वह हल्का गुस्सा दिखाता है. उसे पहली बार याद आता है कि उसके जाने के बाद पापा का उतावलापन नियंत्रित करनेवाला भी कोई नहीं रहेगा और वह उतावली में अपना नुकसान करते रहेंगे.

'अरे तुम ये स्वेटर... भूल आये थे तकिये के नीचे...! तुम्हारी मम्मी ने कहा कि... तुम्हें दे आऊं.... इसलिए थोड़ा दौड़ना पड़ा... लो बैग में रख लो...' पापा अटकती सांसों के बीच बोलते हैं और उसे देखते रहते हैं.

उसे अचानक पापा के ऊपर तरस आने लगता है, फिर अपने ऊपर. फिर पापा के ऊपर प्यार आने लगता है और अपने ऊपर गुस्सा. स्थिर, गंभीर आंखों और लंबी सांसों के बीच धड़कते दिल में पापा ने कितनी चिंताएं छुपा रखी हैं... अगर इस समय पापा भी उसके लिए अपने दिल में छुपा प्यार ज़ाहिर कर देते !

वह डूबती आंखों और कांपते हाथों से स्वेटर हाथ में लिये थोड़ी देर खड़ा रहता है और पापा को देखता रहता है. पापा बोलते रहते हैं.

'सारी ज़रूरी चीज़ें रख ली हैं न ? ये याद रखना कि हमेशा अपनी मेहनत पर विश्वास रखना. सही रास्ता कठिन हो या लंबा, हमेशा उसे ही चुनना. शरीर और पढ़ाई दोनों पर ध्यान देना. पैसों की चिंता मत करना. चलो, अब जाओ, देखो अनुज ने ऑटो तय कर लिया है. ...बुला रहा है तुम्हें...' पापा सामान्य दिखने की पूरी कोशिश कर रहे हैं.

'जी...' वह भरी आंखों के साथ पलटता है. दो-तीन क़दम चलने पर पापा की आवाज़ सुनाई देती है.

'कहो तो मैं भी चल ही चलूं... वैसे भी घर पर बैठा ही रहूंगा...' पापा की धीमी आवाज़ जैसे कहूं और न कहूं के संशय के बीच से निकलकर आ रही है. ज़माने भर का दर्द और निवेदन समेटे अपनी आवाज़ को उन्होंने इस तरह ज़ाहिर करना चाहा है जैसे उन्होंने बहुत सामान्य और छोटी सी बात कही हो, और इसके न माने जाने पर भी उन्हें कोई ख़ास फर्क नहीं पड़ेगा.

द्वारा-श्री राजिंदर सिंह,
६७९/७, गोविंदपुरी, कालकाजी, नयी दिल्ली-११००१९.

शब्द जहां लौट आते हैं अनंत से....

राहुल झा

शब्द जहां भीगते हैं
और नम हो जाते हैं
वहीं तुम -
खिल उठती हो
भिनसारे की धूप की तरह !

शब्द जहां हवा के साथ
दूर तक जाते हैं....
और शीतल हो जाते हैं
वहीं तुम -
महक उठती हो
ऋतु के पहले फूल की तरह !

शब्द जहां फूलों पर बैठते हैं
और तितलियों की तरह
रंगीन हो जाते हैं
वहीं तुम -
दमक उठती हो
सागर से निकले स्फटिक की तरह !

शब्द जहां मासूम और
तोतले हो जाते हैं
वहीं तुम
बज उठती हो
जलतरंग की तरह....!

शब्द जहां लौट आते हैं अनंत से
और शामिल हो जाते हैं जब
किसी कविता की सबसे सुंदर पंक्ति में
वहीं -
मैं अपना एक कंधा
तुम्हारे नाम करता हूं.....!

द्वारा श्री अनिरुद्ध सिन्हा,
गुलज़ार पोखर, मुंगेर (बिहार) ८११२०१

आमने / सामने

शेष सृजन के संकल्पित 'क्षण'

✍ मदन मोहन 'उपेंद्र'

(बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठें खोलना चाहता है. लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने/सामने.' अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नीसिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव और सलाम बिन रज़ाक से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है मदन मोहन 'उपेंद्र' की आत्मरचना.)

अब आयु के सत्तर वर्ष शरद बसंत बिताने के पश्चात् सोचना बड़ा कठिन लगता है कि पीछे मुड़कर कहां तक देखा जाये. स्मरण नहीं कि सृजन-लेखन कब, कहां, कैसे अंतर में फूट पड़ा और मैं कवि-लेखक बन गया ! इतना अवश्य याद है कि कक्षा चार-पांच में ही मेरी अभिरुचि कविताएं कंठस्थ करने की अधिक रही थी. फिर मिडिल स्कूल सुल्तानपुरा आगरा में गुरुदेव शास्त्री जी की प्रेरणा से कविता के अंकुर अंत्याक्षरी के रूप में विकसित हुए जब मैं अपनी काव्य प्रतिभा से कंठस्थ कविताओं के प्रारंभ के अक्षर बदलकर बाजी हारने से बच जाता था. धीरे-धीरे अंत्याक्षरी के लिए मैंने दोहे गढ़ना और पैरोडी करना भी शुरू कर दिया था. यह था मेरी काव्य प्रेरणा का प्रथम चरण. फिर घर में भी काव्यमय स्थिति यों बनी कि पिताश्री नित्य सवेरे रामायण का सस्वर पाठ करते थे और मैं पास ही बैठकर अपनी पढ़ाई करता और स्कूल के कार्य पूर्ण करता. यों रामायण के दोहे, चौपाई मेरे भीतर पैठते गये और परिणाम यह हुआ कि मात्र सत्तरह वर्ष की आयु में बारहवीं में पढ़ते हुए शिव-सती प्रसंग पर दाक्षायणी नामक खंड काव्य का सृजन कर दिया जिसका धारावाहिक प्रकाशन बाद में, सन् १९५८-५९ में मासिक प्रेम संदेश वृंदावन में हुआ !

चूंकि लेखन का बीजारोपण दस-ग्यारह वर्ष की आयु में ही हो चुका था एवं हास्य व्यंग्य की कविताओं, दोहों की पैरोडी आदि करने में तब अधिक रुचि थी, इसलिए रचनाएं अख़बारों एवं स्थानीय पत्रिकाओं में युवावस्था में ख़ूब छपने लगी थीं, पहली कविता "मैं नेता हूं खिलवाड़ नहीं" शीर्षक व्यंग्य हास्य की प्रसिद्ध पत्रिका "नोंक झोंक" (आगरा) में सन् १९५२ में अगस्त अंक में प्रकाशित हुई थी. सन् १९५५ में जब मैं सेंट जॉन्स कालेज आगरा में बी. कॉम. का छात्र था तब हिंदी मुझे डॉ. कुलदीप पढ़ाते थे जो इस क्षेत्र के प्रसिद्ध कवि एवं आलोचक थे. कक्षा में प्रायः अपने गीत सुनाया करते और मुझ जैसे छात्रों से कविताएं सुनकर झूम उठते थे.

यद्यपि मेरा जीवन संघर्षों की अबूझ पहेली रहा है. मात्र चार वर्ष की अवस्था में मां से विछोह हुआ. बुआ ने मुझे मां का स्नेह दिया, पिता ने दूसरा विवाह किया यानी मेरी मौसी ने भी मुझे ख़ूब प्यार किया.

किंतु मौसी भी मात्र आठ-दस वर्ष ही साथ दे सकीं और एक भाई, दो बहनें छोड़कर वे भी स्वर्ग सिधार गयीं. तब मैंने हाई स्कूल पास किया था, मैं पिताजी के साथ संघर्ष करते हुए चार-पांच वर्ष बाद ही राजकीय सेवा में लिपिक नियुक्त हो गया किंतु ऐसे संघर्षों में भी लेखन बराबर चलता रहा. सन् १९५८ से १९६५ तक दिशाहीन लेखन चलता रहा - लघुकथाएं, लेख-टिप्पणियां, होली-दिवाली की सामयिक कविताएं एवं पत्र-पत्रिकाओं में छपास का रोग इतना बढ़ गया कि सैकड़ों रचनाएं अख़बारों-पत्रिकाओं में छपतीं और घर में ढेरों अख़बार आते. चूंकि घर के अभावों के कारण सन् ६५ में विवाह हो चुका था इसलिए कविताओं में रोमांस भी फूटने लगा था. ऐसे गीतों की प्रथम श्रोता होने का सौभाग्य भी पत्नी सत्यप्रभा को मिलने लगा. आगरा में मेरा संपर्क नागरी प्रचारणी सभा के माध्यम से प्रायः सभी कवि, साहित्यकारों से हो गया था. सभा के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री तोताराम 'पंकज' जी से घनिष्ठता थी. वहां रविवार में प्रायः गोष्ठी होती रहती थी जहां सोम ठाकुर, निखिल सन्यासी, डॉ. कमलेश, डॉ. घनश्याम अस्थाना, डॉ. रामविलास शर्मा, ऋषिकेश चतुर्वेदी, बनारसी दास चतुर्वेदी, राजेंद्र मिलन, डॉ. शिवदान सिंह चौहान, डॉ. राम गोपाल सिंह चौहान, श्री. प्रेमदत्त पालीवाल, प्रणवीर चौहान, सतीश

चतुर्वेदी, रामगोपाल परदेसी, शांति सुमन आदि का सान्निध्य मिलता रहता था. सन् १९६२ के चीन के सीमा युद्ध एवं १९६४ के पाकिस्तान के हमले ने तत्कालीन कवियों को नये जोश से भर दिया. वीर रस की अनेक कविताएं लिखीं एवं अख़बारों में छपीं. उसी दौरान कवि बंधु राम गोपाल परदेशी जी ने 'युवक' मासिक के संपादकीय विभाग से नौकरी छोड़कर प्रगति प्रकाशन आगरा की स्थापना की जिसमें सभी स्थानीय कवियों का सहयोग रहा एवं चीन-पाक युद्धों की कविताओं के अनेक संग्रह सहयोगी आधार पर प्रगति प्रकाशन से प्रकाशित हुए. जिनके संपादन एवं प्रस्तुतीकरण में मैंने पूर्ण सहयोग किया. अखिल भारतीय स्तर पर प्रगति प्रकाशन की ख्याति बढ़ती गयी. भाई परदेसी ने सहयोगी आधार पर 'गीत सरगम', 'गीतांकुर', 'स्वरलहरी', 'गीतमंजरी' आदि बड़े आकार के आठ-दस संग्रह सौ-सौ कवियों के दो-दो गीत, सपरिचय छापे और पत्र-पत्रिकाओं में उनकी चर्चा भी ख़ूब हुई. जिसका परिणाम यह हुआ कि भाई रामगोपाल परदेशी ने मेरा प्रथम गीत संग्रह "उलझी अलकें" अगस्त १९६४ में प्रकाशित किया. जिसमें विस्तृत कवि परिचय एवं गीतों की व्याख्या बड़े मनोयोग से भाई परदेसी जी ने की, यद्यपि आज परदेसी जी इस संसार में नहीं हैं. सन् १९९६ में एक कार एक्सीडेंट में उनकी मृत्यु हो गयी किंतु उनका अपनापन आज भी आंखें गीली कर देता है. 'उलझी अलकें' गीत संग्रह की पत्र-पत्रिकाओं, अख़बारों में ख़ूब चर्चा हुई, डॉ. रामविलास शर्मा, घनश्याम अस्थाना, डॉ. कमलेश, राष्ट्रकवि मैथली शरण गुप्त, दिनकर, रामावतार त्यागी, बालस्वरूप राही, मनहर चौहान, रामरिख मनहर, राजेंद्र दीक्षित, ऋषिकेश चतुर्वेदी, प. हरिशंकर शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, आदि ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की एवं विस्तृत अभिमत भेज कर मुझे उत्साहित किया.

तब मेरी कविता के उत्थान का दौर था. सन् १९६२ से १९६६ तक आगरा में मुझे व्यंग्य एवं ओज के कवि के रूप में ख्याति एवं चर्चा मिल चुकी थी. सम्मेलनों एवं गोष्ठियों में सतत शिरकत जारी थी किंतु पिताजी उसे रोकना चाहते थे, क्योंकि सरकारी नौकरी मुश्किल से मिली थी. प्रायः कहते रहते बेटा नौकरी कर लो या कवि-सम्मेलन. चूंकि रात भर सम्मेलन में रहकर दिन में ऑफिस में मनोयोग से काम नहीं कर पाता था, परिणामस्वरूप मैंने कवि सम्मेलन में जाना स्थगित कर दिया लेकिन स्थानीय गोष्ठियों में जाता रहा, यद्यपि अपने अग्रजों की नाराज़गी भी झेलनी पड़ी, किंतु जीवन संघर्ष की विवशता थी. वैसे भाई-बहन, पिता-पत्नी के संयुक्त परिवार में लेखन चिंतन को समय तो ख़ूब मिलता था. एक पुत्र सन् १९६१ अगस्त में हमारे बीच आ गया था किंतु भाई-बहनों के बीच उसका पालन-पोषण सुगमता से चल रहा था, और साथ ही लेखन चिंतन सुविधानुसार जारी था. पत्नी भी इतनी सुशील, सुपात्र थीं कि उन्हें गीत सुनने पढ़ने में रुचि रहती थी. हां, कभी-कभी गोष्ठी से रात में ग्यारह-बारह बजे आना अख़रता था. पतिव्रता होने के कारण पत्नी खाना बिना खाये बैठी रहती थीं. इस विडंबना के लिए मैं कभी-कभी अपनी कविता को भी कोसता था. इसीलिए मैं अपना परिचय एक मुक्तक में यों देता था : *हम नहीं ऊंचे महले फूले-फले हैं/हम नहीं सोने जड़े पलना झुले हैं/माटी सने गोबर लिये आंगन हमारे/हम धरा के पुत्र जीवन भर छले हैं !*

सृजन, संपादन एवं नागरी प्रचारिणी सभा की गोष्ठियों का दौर सुचारु रूप में चल ही रहा था कि प्रशासनिक कारणों एवं मेरे कर्मचारी यूनियन में सक्रिय भागीदारी के कारण मेरा स्थानांतरण आगरा से मथुरा के लिए सन १९६८ में हो गया. रुकने और रुकवाने के ख़ूब प्रयास किये किंतु सामूहिक स्थानांतरण थे. सन् १९६७ की प्रदेश व्यापी कर्मचारी हड़ताल के कारण सभी को स्थानांतरण पर जाना पड़ा.

जुलाई १९६८ में मथुरा में पदस्थापित होने पर यहां का साहित्यिक वातावरण नये सिरे से पहचान बनता गया. यों आगरा से भी मथुरा के कवि-लेखक मित्र संपर्क में थे किंतु नित्यप्रति के संवाद एवं गोष्ठी सम्मेलनों की मुलाक़ातें नयी ऊर्जा भरने लगीं. विशेष स्थिति यह हुई कि प्रो. सव्यसाची, डॉ. सुरेश पांडेय एवं मुनीश मदिर के प्रगतिशील विचारों एवं ओजस्वी काव्य लेखन ने कविता एवं कहानियों में जनवादी प्रगतिशील सोच को दिशाबद्ध किया. अब गीत-नवनीत, एवं छंद-सवैया के जाल से निकल कर मेरी कविता अतुकांत, जन रुचिकर मजदूर किसान की पक्षधर कविता का रूप लेने लगी. गोष्ठी में प्रायः मित्र कहने लगे कि उपेंद्र तुम्हारी कविता में अब आग पनप रही है. मथुरा में हिंदी प्रचार सभा एवं प्रगतिशील लेखक संघ से निकट संपर्क थे. सभा ने मुझे सक्रिय भागीदारी के लिए सभा का निदेशक नियुक्त कर दिया एवं चार-पांच वर्ष बाद सभा का अध्यक्ष बनाकर सभा को अधिक गतिशील बनाने की ज़िम्मेदारी मुझे सौंप दी. मैंने 'अतिरेक' मासिक पत्रिका का संपादन प्रारंभ किया. तभी जून ७२ में मेरे प्रगतिशील कविता संग्रह 'किरण भर उजाले को' का प्रकाशन, हिंदी प्रचारिणी सभा मथुरा के द्वारा किया गया जिसकी चर्चा नव भारत टाइम्स, साप्ताहिक हिंदुस्तान, आज, साहित्य भारती, युवक, तटस्थ, प्रतिबिंब, श्रृंगार, धरती आदि पत्र-पत्रिकाओं में हुई. आगरा, दिल्ली, जयपुर, ग्वालियर, पटना एवं भोपाल में संग्रह की कविताओं पर चर्चा, परिचर्चाएं भी हुईं.

सन् १९८० में लेखा सहायक की पदोन्नति पर मैनपुरी जाना हुआ. जहां सर्वश्री लाखनसिंह भदौरिया, श्रीकृष्ण मिश्र, प्राणाधार कथाकारों एवं कवियों के सान्निध्य में लेखन का क्रम चलता रहा एवं जनवादी गीतों के संग्रह 'सवेरा होने वाला है' का प्रकाशन भी सभा द्वारा मेरे चालीसवें जन्म दिन ८ सितंबर १९८० को किया जिसका भव्य आयोजन सभा द्वारा किया गया, डॉ. सुरेश पांडेय एवं प्रो. सव्यसाची मेरी लेखन की गति से विशेषतः प्रभावित रहे, उनका प्रोत्साहन ही मुझे सदैव लेखन-प्रकाशन

के लिए प्रेरित करता रहा. वैसे भी मैं अपनी साहित्यिक आय यानी रचनाओं के प्रकाशित होने या पत्र-पत्रिकाओं से पारिश्रमिक एवं आकाशवाणी के कवि सम्मेलनों से प्राप्त राशि अपने कविताओं के संग्रहों के प्रकाशन में व्यय करता था. इसलिए संग्रहों के प्रकाशन का क्रम चलता ही रहता था.

दो वर्ष पश्चात् मैनपुरी से भी स्थानांतरण एवं पदोन्नति पर कोटद्वार जाने का क्रम बन गया, जहां "साहित्यांचल" नामक संस्था एवं डॉ. वेदप्रकाश 'शैवाल', कविवर थपरियाल, कमलेश निर्मल आदि का सान्निध्य मिला और पर्वतीय अंचल में गढ़वाल मंडल की कविता एवं कथा परंपरा से साक्षात्कार हुआ. कोटद्वार के निवासी प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री चंद्रसिंह गढ़वाली, जो पेशावर में, सेना में १९४२ के विद्रोह के लिए प्रसिद्ध थे, उनके जीवन चरित्र एवं कार्य शैली पर "पेशावर पर्व" नाटक का सृजन किया जिसका प्रकाशन एवं मंचन कोटद्वार में चंद्रसिंह गढ़वाली की जयंती पर धूमधाम से हुआ. यद्यपि कोटद्वार में चार वर्ष ही रहना हुआ किंतु वहां के कवियों का अपनत्व अभी भी जारी है. विगत मार्च २००५ में "साहित्यांचल" द्वारा 'चंद्र ज्योति' अलंकरण से सम्मानित किया गया एवं मैनपुरी में भी वसंत २००४ के आयोजन में साहित्य परिषद मैनपुरी द्वारा 'रवींद्र' सम्मान से अलंकृत किया गया.

सन् ८८-९२ के मध्य अलीगढ़ में लेखाधिकारी के रूप में पदस्थापित रहने का अवसर मिला. तब बंधुवर डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, राजेंद्र गढ़वालिया, कुंदन लाल उप्रेती, रमेश राज, डॉ. कुंवरपाल सिंह, नमिता सिंह का प्रोत्साहन मिला एवं कहानी लेखन में अधिक सक्रियता रही. आकाशवाणी पर भी तब कहानी का प्रसारण होने लगा. 'ख़रीदा हुआ वह,' 'दुम हिलाता आदमी' एवं 'फटोलीराम का सत्य', तीनों कहानी संग्रह अलीगढ़ प्रवास के दौरान दो वर्ष में प्रकाशित हुए. 'बच्चे चुप हैं' कविता संग्रह भी सन् ९२ में ही प्रकाशित हुआ. लेखन की गंभीरतम सक्रियता सन् १९९० से ही अलीगढ़ प्रवास से प्रारंभ हुई. चूंकि वहां प्रबुद्ध वर्ग का संपर्क मिला एवं संवाद का स्तरीय क्रम जारी रहा. बंधुवर अमिताभ जी "प्रसंगवश" के माध्यम से चर्चा एवं प्रसार का पर्याप्त अवसर देते रहे.

अक्तूबर सन् १९९४ में राजकीय सेवा से निवृत्त होने पर अवसर मिला तब स्थायी रूप से मथुरा रहने का प्रारब्ध बन गया. यद्यपि 'सम्यक' का संपादन सन् ८७ से ही प्रारंभ हो गया था किंतु सक्रिय रूप से 'सम्यक' को गति ८९-९० के पश्चात मिली तथा सेवानिवृत्ति के पश्चात् सर्वश्री दिनेश पाठक 'शशि', जगदीश व्योम एवं डॉ. अनिल गहलौत, डॉ. डी. सी. वर्मा के अथक प्रयास एवं सक्रिय भागीदारी ने 'सम्यक' को नूतन रूप एवं रचनात्मक गति प्रदान की. इधर समय एवं सक्रियता भी मेरा साथ देने लगी. चौबीस घंटे, लेखन एवं संपादन की दृष्टि बनी रहने लगी. फलतः 'सम्यक' के अनेक दस्तावेज़ी एवं यादगार अंक प्रकाशित हुए, अखिल भारतीय स्तर पर 'सम्यक' चर्चा के केंद्र में आ गया.

मदन मोहन 'उपेंद्र' की ग़ज़लें

(१)

भूख-प्यास की दौड़ तेज़ है घर-घर में,
चिंता से व्याकुल चेहरा है घर-घर में ।
बाहर चारों ओर ही शोर ही शोर सुना,
चुप्पी भीतर ही भीतर है घर-घर में ।
राम आसरे जीने की मजबूरी है,
पानी पी पी हंसी ख़ुशी है घर-घर में ।
प्रेमचंद के होरी धनिया ख़स्ताहाल,
आज़ादी की हवा नहीं है घर-घर में ।
ट्रेक्टर जीपें दौड़ रही हैं ख़ूब 'उपेंद्र',
तंगी फिर भी छायी है घर-घर में ।

(२)

जब से आदमक़द बैठा है सिंहासन पर,
घुटने लगी सांस जन गण की अपने आसन पर ।
शब्दों के जंगल में अर्थों के साये बदनाम,
संदर्भों की चिंतन रेखा छायी जन, जन पर ।
थके-थके से दीख रहे सब भाव दिशाओं के,
ख़ंजर नंगा लटक रहा जनसेवक के तन पर ।
नरभक्षी निर्मम बेख़ौफ़ घूमते फिरते हैं,
किंतु हज़ारों पहरे बैठे हम सबके मन पर ।
अपने अपनों की छाया से डरने लगे 'उपेंद्र',
औरंगजेबी तेवर हावी हैं अनुशासन पर ।

किंतु 'सम्यक' ने मेरे लेखन को मंद किया. अब उतना लेखन नहीं हो पाता. विगत दस बारह वर्ष में मात्र एक ग़ज़ल संग्रह 'बदल गये दस्तूर' एवं एक हाइकु संग्रह 'चिड़िया आकाश चीर गयी' प्रकाशित हुए हैं. यों अनेक पुरानी रचनाएं पांच सात संग्रहों के लिए बिखरी पड़ी हैं, किंतु फिर भी लेखन की गति से संतोष नहीं है. अभी भी नया लिखने और नयी सोच बनाये रखने को मन मस्तिष्क तड़पड़ाता रहता है.

ऐसा लगता है कि अब तक जो भी लिखा है, वह अपूर्ण एवं अपर्याप्त है. आत्मकथात्मक लेखन का भी क्रम चलता रहता है, जिसको 'अंतर्मुखी-अक्षांश' शीर्षक देने का विचार है. कुछ मित्रों, अग्रजों के संस्मरण भी लिखना शेष है, किंतु भीतर एक अनमनापन, एक अबूझ, अनकहा बोध भीतर ही भीतर ठहर गया है. चाहते हुए भी लेखन अधूरा-अधूरा सा रहता है. किंतु भीतरी दृढ़ता शेष सृजन को संकल्पित करने को बचनबद्ध है. देखता हूं वह क्षण कब आता है.

ए-१०, शांति नगर, मथुरा-२८१००१

सागर / सीपी

"साहित्य सभ्यता की निर्माण प्रक्रिया का एक अनिवार्य हिस्सा है!"

- प्रमोद कुमार तिवारी

(अपने पहले उपन्यास 'डर हमारी जेबों में' के लिए २००५ के 'अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान' से सम्मानित श्री प्रमोद कुमार तिवारी से श्रीमती मधु प्रकाश की बातचीत.)

● **आप अपने पहले ही उपन्यास से हिंदी साहित्य के दिग्गजों की कतार में आ खड़े हुए हैं. यह सब देखकर कैसा लग रहा है ?**

ख़ुद को दिग्गजों की कतार में मानने का तो सवाल ही नहीं आता है. हां, 'डर हमारी जेबों में' को हिंदी जगत का जैसा स्नेह मिला है, उसका सुख ज़रूर दिग्गज का सुख है. दरअसल रचनात्मकता के क्षेत्र में इस बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि आपने क्या लिख रखा है क्योंकि हर रचना एक अलग तरह की अंतर्यात्रा और चुनौती होती है. सच पूछें तो किसी रचनाकार की पहली ही रचना को बेहतर स्वीकृति मिल जाने का कभी-कभी नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है, उसकी रचनात्मकता पर. इसलिए मैं ख़ुश भी हूं और सजग भी.

● **आम तौर पर कोई भी लेखक कविता से शुरू करते हुए, कहानियों के ज़रिये हाथ साफ़ करते हुए १५-२० बरस बाद उपन्यास विधा पर हाथ आज़माता है लेकिन आपके मामले में ऐसा नहीं हुआ है. पहला ही उपन्यास ५०० पृष्ठों का. सुना है आपके दूसरे और तीसरे उपन्यास भी तैयार हैं और माशा अल्लाह वे भी इतने ही बड़े हैं. ऐसा कैसा हुआ ?**

ऐसा नहीं है कि कविताएं और कहानियां लिखने की मैंने कोशिश नहीं की है बल्कि अपनी कविताओं को लेकर तो मैं काफ़ी गंभीर हूं. सच तो यह है कि मैं कविताएं गद्य से भी ज्यादा पढ़ता हूं. कहानियों में मन ज़रूर नहीं रमा. लगा कि जो मेरे अनुभव हैं और अपने समय और समाज को लेकर जो जटिल सच्चाइयां हैं, उन्हें सशक्ततापूर्वक अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यास ही उपयुक्त विधा है. आपने सही कहा कि मेरा दूसरा उपन्यास 'अरे चांडाल' प्रकाशनाधीन है और फिलहाल मैं अपने तीसरे उपन्यास पर काम कर रहा हूं. लेखन मेरे लिए एक ऐसा सच है जिसके बिना मैं शायद अपने अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकता. ऐसा लगता है, जो गुज़र गये, वे क्षण अनजीये रह गये. मैं लेखन के माध्यम से उन्हें फिर से उनकी पूर्णता में जीने की कोशिश करता हूं. रोज़मर्रा की ज़िंदगी जीते हुए जो शोर और भीड़ चेतना के अंदर तक जाती है, मेरे लिए लेखन उसमें ज़िंदगी की तलाश है. झूठ, अर्धसत्य, आरोपित सत्य, पूर्वाग्रह, दुराग्रह इन सब कारस्तानियों को समझने और सबके क़रीब होने की कोशिश है.

● **क्या आपको लगता है कि इस तरह के लेखन का कोई मतलब है जब हिंदी का पाठक एक सिरे से ही ग़ायब है और सब कुछ प्रायोजित होता जा रहा है. प्रकाशन, समीक्षाएं, पुरस्कार, चर्चाएं.**

अगर इस तरह से सोचें तो किसी भी युग में किसी भी सभ्यता में गंभीर साहित्यिक लेखन का कोई मतलब नहीं रहा. साहित्य न तो त्रासदियों को रोक पाया, न ही उसका कोई विकल्प प्रस्तुत कर पाया. ऐसा कभी नहीं हुआ कि गंभीर साहित्य पढ़ना आम आदमी की प्राथमिकताओं में शामिल रहा हो. फिर भी मतलब तो है. दरअसल, साहित्य सभ्यता की निर्माण प्रक्रिया का एक अनिवार्य हिस्सा है. भले ही इन दोनों के बीच कोई सीधा कार्य कारण संबंध दिखा पाना संभव नहीं है. इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हरेक युग और सभ्यता में संकट अनिवार्यतः भाषा का संकट भी रहा है और उस युग वरन, उसके परावर्ती युग की संवेदनाओं के निर्माण की एक राह उस युग के साहित्य से ही हो कर गुज़री है. मुझे लगता है साहित्यकार के सामने इस तरह की दुविधा तब खड़ी होती है जब वह रचना कर्म को तात्कालिक स्वीकारोक्तियों से जोड़ कर देखने लगता है. अगर मान भी लें कि समीक्षाएं, पुरस्कार आदि प्रायोजित हो रहे हैं तो भी यह संतोष रहना चाहिए कि कुछ रचनाएं प्रकाश में आ रही है. अंततः तो किसी भी रचना को अपनी व्यापक गुणवत्ता सिद्ध करनी ही होगी. आज तक विश्व साहित्य में किसी भी कमजोर कृति को कोई समीक्षक या पुरस्कार महान नहीं बना पाया.

● **आपके इस उपन्यास का 'लोकेल' खेलासराय नाम का एक काल्पनिक क़स्बा है लेकिन खेलासराय में जो घट रहा है वह पूरे देश का सच है इसकी पृष्ठभूमि पर कुछ रौशनी डालें.**

मैं कुछ अवसरों पर पहले भी कह चुका हूं कि भारतीय लोकतांत्रिक समाज की सबसे बड़ी समस्या उन राजनैतिक, प्रशासनिक, सामाजिक और शैक्षणिक संस्थानों का कमज़ोर होते चले जाना है जिनसे लोकतंत्र को ताक़त मिलती है. भ्रष्टाचार और नैतिक मूल्यों का क्षतिग्रस्त होना एक न्यायपरक एवं प्रगतशील समाज के रूप में हमारे विकास को अवरुद्ध कर रहे हैं. खेलासराय इसी दुखद सच को दृष्टि में रख कर रचा गया है. संभवतः इसीलिए इसमें हमारे बृहत्तर राष्ट्रीय परिवेश की वेदनाओं की धमक सुनायी देती है.

आपने ग़ौर किया होगा कि उपन्यास के बिल्कुल आरंभ में हम इस समस्या से रू ब रू होते हैं कि एक मध्यमवर्गीय परिवार महसूस करता है कि पुत्र पुत्रियों के बेहतर भविष्य के लिए गांव से नाता तोड़ना ज़रूरी है. गांव का स्कूल केवल गदहिया गोल पैदा कर सकता है. यह और बात है कि गांव से खेलासराय आने के बाद भी यह परिवार संतुष्ट नहीं हो पाता. अलख सिंह की पत्नी के मन में दुख हावी हो जाता है कि अपने बेटे विशाल को किसी हिल स्टेशन वाले कॉन्वेंट स्कूल में नहीं भेज पायीं. मध्यमवर्ग की यही पलायनवादी आत्मकेंद्रित मानसिकता वर्तमान सामाजिक परिदृश्य का एक व्यापक सच है. जहां भी समस्या है, भागो वहां से. गांव से शहर, शहर से महानगर, महानगर से अमेरिका.ग़ौर करने की बात यह भी है कि यह पलायन निर्भर किस चीज़ पर है ? भ्रष्टाचार और काले धन के ऊपर. अलख सिंह की पत्नी को यह पीड़ा भी सताती रहती है कि उनके पति काले धन की होड़ में शामिल नहीं होते, वरना बेटा खेलासराय के शिशु मंदिर में नहीं पढ़ता होता.

और इस खेलासराय में कोई रहे भी तो क्यों रहे ? विशाल छटपटाता ही रह जाता है किसी भी तरह से खेलासराय के ठहरे हुए, बल्कि सड़ रहे माहौल से बाहर आने को. खेलासराय की आगे आ रही पीढ़ी पूरी तरह से दिशाहीन और लक्ष्यहीन है. जानती ही नहीं कि आवारागर्दी के अलावा भी कुछ किया जा सकता है. उससे भी अधिक ग़ैर ज़िम्मेदार और लक्ष्यहीन उसके स्कूल और कॉलेज हैं. एक पूरी पीढ़ी दिशाहीनता की अंधी सुरंग में क़ैद है और एकाध लोगों को छोड़ कर वह किसी के लिए भी चिंता का विषय नहीं है. बल्कि खेलासराय के नेताओं के लिए यह एक सुखद स्थिति है. पाजामाधारियों की इसी अभिशप्त भीड़ में उन्हें अपने होनहार कार्यकर्ता मिलते हैं.

खेलासराय में अपराधी तो अपराधी हैं ही, राजनीतिज्ञ तो अपराधियों की तरह सोचते ही हैं, सरकारी अधिकारी और कर्मचारी भी अपराधियों की तरह ही आचरण करने लगे हैं. और ऐसे सारे लोग एक दूसरे से इस प्रतीति के बंधन में बंधे दिखते हैं कि काले धन के बिना काम चल ही नहीं सकता.

निःसंदेह यह सब कुछ केवल खेलासराय में ही नहीं हो रहा, किंतु 'डर हमारी जेबों में' को रचने का उद्देश्य मात्र संस्थाओं के विघटन का विवरण दे देना भर नहीं था बल्कि कोशिश यह थी कि विघटन के इस दुख के विविध आयामों को व्यक्ति और समाज दोनों की ही चेतना पर पड़ने वाले विनाशकारी प्रभावों के परिप्रेक्ष्य में अभिव्यंजित किया जा सके.

● **उपन्यास पूरा करके आपको कैसा महसूस हुआ ? क्या अपनी बात कह पाये ?**

'डर हमारी जेबों में' को लिखना एक बड़ी चुनौती थी मेरे लिए. कई अंशों को तो कई-कई बार लिखना पड़ा. एक भ्रष्ट समाज अपने प्रियजनों के प्रति भी कितना निष्ठुर और संवेदनहीन हो जाता है. किस चालाकी से अपने अनैतिक जीवन मूल्यों की अनिवार्यता का भ्रम फैलाता है और एक ईमानदार आदमी इस दुष्चक्र में किस तरह से पिसता है, खेलासराय विशाल, और उसके परिवार के माध्यम से इन सभी स्थितियों को स्थापित करने में बहुत श्रम करना पड़ा है. यह कैसी विडंबना है कि लोग देख कर भी नहीं देखते. सब कुछ जानते हुए भी चुप रहते हैं. अपने ही देश में अपने ही लोगों से डरे हुए हैं. मैं दिखाना चाहता था, कि ये डरे हुए लोग ख़ुद तो कुछ नहीं ही कर रहे, उन लोगों के लिए भी मुश्किलें पैदा कर रहे हैं जो कुछ सार्थक करने का माद्दा रखते हैं. पता नहीं, कितनी सफलता मिल पायी है. हां, काम पूरा होने का संतोष तो है ही.

● **आप क्या पढ़ते हैं और कौन से शौक़ हैं पढ़ने के अलावा ?**

समकालीन हिंदी साहित्य के साथ-साथ हिंदी में उपलब्ध दूसरी भारतीय भाषाओं का साहित्य पढ़ना मुझे अच्छा लगता है. अंग्रेजी और अंग्रेजी में उपलब्ध अन्य ग़ैर भारतीय भाषाओं का साहित्य भी पढ़ता हूं.

● **समकालीन हिंदी लेखन परिदृश्य को देखकर कैसा महसूस करते हैं ?**

जहां तक रचनात्मक लेखन के परिदृश्य का प्रश्न है, वह बेशक उत्साहजनक है. ख़ूब लिखा जा रहा है. और कथ्य के क्षेत्र में काफ़ी विविधता दिखायी देती है. उपन्यास सबसे महत्वपूर्ण विधा के रूप में उभरा है. और कई पीढ़ियां एक ही साथ काम कर रही हैं. यही परिवेश और भी बेहतर होता अगर समकालीन रचनाओं पर व्यापक चर्चा होती. उनके प्रचार-प्रसार पर ध्यान दिया जाता. बहुत सा अच्छा लेखन चर्चा के अभाव में खो जाता है. प्रकाशकों एवं मीडिया की भूमिका बिल्कुल ही नकारात्मक है.

● **आपके उपन्यास 'डर हमारी जेबों में' शुरू से आख़िर तक निराशा का ही स्वर नज़र आता है, क्या सचमुच हालात इतने ही ख़राब हैं या किसी ख़ास वजह से ऐसा हुआ है ?**

आपका यह कहना सही है कि 'डर हमारी जेबों में' में निराशाजनक परिस्थितियों की भरमार है. किंतु रचना में इन परिस्थितियों को लाने के पीछे क्या यह आशा काम नहीं कर रही होती है कि परिवर्तन की प्रक्रिया को बल मिलेगा इससे ? निराशा इसलिए वर्ण्य नहीं होती क्योंकि वरेण्य है, बल्कि इसलिए है कि क्योंकि उससे मुक़ाबले के लिए उसकी भयावहता को ठीक से समझना ज़रूरी है. कड़वे यथार्थ की पुनर्रचना का यही मक़सद होता है और 'डर हमारी जेबों में' की अंतर्प्रेरणा भी यही है.

ये मोचें ये खरोंचें
आओ इनके बारे में आज सोचें ।

रही बात यह कि उपन्यास में इस निराशा का कोई मज़बूत विकल्प आया ही नहीं. प्रतिरोध के ऐकाकी और छिटपुट प्रयास तो दिखे पर एक लंबे और व्यापक संघर्ष की तैयारी कहीं नहीं दिखी. उपन्यास में चित्रित विजय भइया का प्रतिरोध ऐसा ही

एक एकाकी प्रयास है. ऐसे एकाकी प्रयासों की जो नियति होती है उसकी भी है. विजय भइया हार नहीं मानते, और स्थान बदल कर अपना संघर्ष जारी रखते हैं और यह संघर्ष उस नरक के मुकाबले कुछ भी नहीं है जिसका नाम खेलासराय है. ख़ुद विशाल भी तो लड़ ही रहा है. खेलासराय में डर का माहौल फैलाती शक्तियों से, पर यह बस, इतना ही सिद्ध करता है कि प्रतिरोध की आकांक्षा और हिम्मत अभी भी बची हुई है. मैं यह मानता हूं कि इससे ज़्यादा आशा की बात यह उपन्यास नहीं करता.

प्रमोद कुमार तिवारी
बी-६, सीनियर ऑफिसर्स फ्लैट्स,
जवीहर नगर, खानापारा, गुवाहाटी-७८१ ०२२.

● **अपनी पहली ही कृति पर 'अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान' पा कर कैसा लग रहा है ?**

मैं पहले भी कह चूका हूं कि मेरे जैसे नये लेखक को यह सम्मान दे कर कथा (यूके) ने सृजन की चेतना को मान दिया है. मैं तो ख़ैर ख़ुश हूं ही, साहित्य से जुड़े वे सारे लोग ख़ुश हुए होंगे जो हिंदी आलोचना के केंद्र से रचना के बहिष्कृत हो जाने एवं व्यक्ति केंद्रित चर्चाओं के प्रतिष्ठित हो जाने के साक्षी रहे हैं.

श्रीमती मधु प्रकाश
ए १/१०१ रिद्धी गार्डन,
फिल्म सिटी रोड, मलाड (पू.), मुंबई ४०० ०९७.

लघुकथाएं

युगेश शर्मा

सही तरीका

चिंतामन बाबू ने एक दिन विविध भारती पर 'इक बंगला बने न्यारा' फिल्मी गीत क्या सुना, उठते बैठते, सोते जागते वे बंगले के सपनों में खोये रहने लगे. पत्नी ने बहुतेरा समझाया - इस सपने को साकार करना आसमान में तारे गिनने जितना ही कठिन है. जैसे-तैसे ज़मीन के टुकड़े का इंतज़ाम कर भी लिया तो हज़ार लफड़े और भी हैं. पैसों की व्यवस्था, नगर निगम से नक़्शे की मंजूरी. ठेकेदार से निपटना, बिजली पानी आदि की व्यवस्था. चिंतामन बाबू बड़े धर्म संकट में थे. मकान भी बनवाना चाहते थे और इन सब लफड़ों से दूर रहने की नियत भी उनकी थी. घर में अकेले मर्द जो ठहरे, कहां-कहां दौड़ेंगे.

एक दिन बात की बात में चिंतामन बाबू अपने सपने और धर्म संकट की गाथा अपने सहयोगी लाल बाबू को सुना बैठे. लाल बाबू बहुत चलते पुर्ज़े इंसान हैं. चिंतामन बाबू की बात सुन पहले तो ख़ूब हंसे, फिर बोले - "इतने आसान से काम के लिए तुम फ़िजूल ही हलकान हो रहे हो. अपना मकान बनाना तो आजकल बहुत ही सरल काम है...."

"वो कैसे ?" चिंतामन बाबू ने आश्चर्य से पूछा.

"कोई भी मौक़े की खाली सरकारी ज़मीन, जो झुग्गी बस्ती से लगी हो, देख लो. झुग्गी नेता को १०००-५०० रुपये थमाओ और रातों रात झुग्गी ठोंक लो. कुछ महीनों बाद पक्का निर्माण कर लो. कौन रोकता है. बिजली, पानी का इंतज़ाम तो "वोट देवता" की कृपा से बिना कहे ही हो जायेगा. न ऋण लेने की ज़रूरत और न कोई भागदौड़ करना पड़ेगी. है न सही तरीका - अपना मकान बनाने का," लाल बाबू का अनुभव बोल रहा था.

चिंतामन बाबू का धर्म संकट मिट गया. आजकल वे ख़ुद के मकान के स्वामी हैं. न बिजली के बिल के भुगतान की चिंता है और न संपत्ति कर चुकाने की.

अंतर

वे लोग धड़धड़ाते हए अपने मरीज़ को लेकर मेडिकल वार्ड में दाख़िल हो गये. वार्ड में मौजूद लोग हक्के-बक्के थे. डॉक्टर ने गुस्से से पूछा - 'यह क्या तमाशा है. यह अस्पताल का वार्ड है, मछली घर नहीं है, मिस्टर.'

'मालूम है ! आप तो तत्काल हमारे मरीज़ को पलंग दीजिए और उसका इलाज़ शुरू कीजिए,' भीड़ के एक सदस्य ने तैश के साथ कहा.

डॉक्टर ने कहा - 'वार्ड में थोड़ी देर पहले ही एक पलंग खाली हुआ है. तीन मरीज़ पहले से ज़मीन पर लेटे हुए हैं. उनमें से ही किसी एक को यह खाली पलंग मिलेगा. आपको पलंग खाली होने का इंतजार करना होगा.'

'हम इंतजार करने वाले वर्ग के लोग नहीं हैं जी. हम नेता हैं, सत्तारूढ़ पार्टी के युवा नेता. आप खानापूर्ति कर लीजिए, हम तो अपने मरीज़ को उस खाली पलंग पर लिटा रहे हैं. जल्दी आकर वहां उसे देख लीजिए,' दूसरा युवक दादा टाइप अंदाज में बोला.

...और आनन-फानन में इन लोगों ने मरीज़ साथी को खाली पलंग पर लिटा दिया. वार्ड में हलचल गयी. ज़मीन पर लेटे मरीज़ों के संबंधी चिल्ला पड़े. डॉक्टर समझदार था. चुप्पी साध ली और आनन-फानन में नवागंतुक मरीज़ का चेकअप शुरू कर दिया. वह जानता था - नेतागिरी के हवाई जहाज पर सवार ये शरीफ़ लोग कुछ भी कर गुज़रते हैं.

ज़मीन पर तीन दिन से लेटे एक अधेड़ मरीज़ से न रहा गया. बोल पड़ा - 'यह कहां का न्याय है, वह पलंग मुझे मिलना चाहिए. मैं दो दिन से ज़मीन पर पड़ा हूं. मैं इंसान नहीं हूं.'

डॉक्टर तत्क्षण बोल पड़ा - 'आप तो केवल इंसान हैं, लेकिन वह तो नेता है.'

सी-५, नेहरू नगर, भोपाल-४६२ ००३.

वातायन

लुप्तप्राय पाठक और कहानी की ज़मीन

- हृदयेश भारद्वाज

अक्सर ऐसा आरोप लगाया जाता है कि आजकल कहानी के पाठक बहुत कम रह गये हैं - विशेषकर साहित्यिक कथाओं-कहानियों के. जो थोड़े कुछ पाठक हैं इनमें से अधिकांश का झुकाव ज़्यादातर लघुकथाओं और अपराध कथाओं की ओर रहता है.

इसके लिए कतिपय विद्वान इसमें व्यक्तियों की रुचि का बदलाव और उखपटक, भागदौड़ वाली जीवन शैली के कारण समयहीनता को दोष रूप में देख रहे हैं. हो सकता है पाठकों का कुछ प्रतिशत इन तथ्यों से कथा-अरुचिता को जोड़ता हो, परंतु यदि कथायात्रा के इतिवृत्त पर दृष्टि डाली जाये तो ज्ञात होता है कि कथा जब तक जीवन की छाया बनकर रही और पाठकों को अपने आसपास की सहज पृष्ठभूमि का आभास देती रही तब तक पाठकों को अपनी ओर पूर्णतः आकर्षित करती रही, जैसा प्रेमचंद और तात्कालीन कथाकारों की रचनाओं के साथ हुआ. कालांतर में जैसे-जैसे सहजता के स्थान पर तथाकथित साहित्य का लबादा अधिकावरित होता गया कहानी शब्दाडंबर पूर्ण एवं तर्क और चिंतनप्रधान होती गयी. परिणामतः वह आम पाठक से हटकर ख़ास पाठकों का बौद्धिक शगल बनकर रह गयी. यही कारण है कि आम जीवन से जुड़ी हल्की-फुल्की और आपराधिक घटनाओं पर आधारित 'सत्यकथाओं', 'सच्ची कहानियों' जैसी रचनाओं ने जनमानस को आल्हादित कर दिया. इसमें बाज़ारवाद ने अपनी पूरी भूमिका निभायी.

काश ! साहित्यिक कहानियां भी आम आदमी व सहज परिस्थितियों से जुड़ी होतीं तो वे भी पाठकों की कामनाओं और सरोकारों को उजागर करतीं. उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति के साथ ही मनोरंजन तथा ज्ञानवर्धन का दायित्व भी निभातीं. इन मापदंडों पर जो रचनाएं आयीं, वे जन-जन तक छायी रहीं.

मुझे इस परिदृश्य में कहीं कथाकारों की चूक अधिक दृष्टिगोचर होती है. इतिहास गवाह है कि कथाओं ने ही अपने सशक्त माध्यम से सदैव जनचेतना जगाने व जनजागरण के प्रयास किये हैं तथा क्रांतियों के जन्म एवं परिपोषण का भी कार्य किया है. भारत के स्वतंत्रता संग्राम में शिवाजी जयंती एवं गणेश उत्सवों के आयोजन इसके ज्वलंत उदाहरण हैं. स्वयं शिवाजी, अपनी माता जीजाबाई द्वारा सुनायी गयी कथाओं से ही अनप्राणित थे. ऐसा न होता तो कथाओं को धर्म के साथ जोड़ने का महत् कार्य हमारे विद्वान पूर्वज न करते. हमारे वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत एवं अन्य साहित्य, कथाओं के अनमोल भंडार अपने उदर में छिपाये बैठे हैं. जिससे आत्मिक एवं सामाजिक अनुशासन की सहज प्रक्रिया अनवरत चलती रही. अन्य समाजों में भी यही धारा सतत बहती रही. बाईबल, कुरान आदि भी ऐसी ही अनमोल कथाओं के आगार हैं जिनसे धर्म और संप्रदायों को सतत् धारा मिलती रही है.

मेरा विचार है कि दुनिया का हर व्यक्ति जन्मजात कथाकार होता है. शायद ही कोई एकाध व्यक्ति इस सृष्टि क्रम में ऐसा उत्पन्न हुआ होगा जिसने अपने आसपास की किसी न किसी घटना को, किसी और को न सुनाया हो. यह सुनाना कथा को ही जन्म देना है. जिसने जितने जतन से, जिसने सुरुचिपूर्ण तरीके से इसे प्रस्तुत किया वह उतना ही बड़ा कथाकार है. इसके लिए न काग़ज़ की ज़रूरत है न कलम की. दुनिया की अधिकांश कथाएं इसी श्रेणी की हैं. इस लिहाज़ से बच्चे व बूढ़े कुशल कथाकार हैं. बच्चों के लिए छोटी से छोटी घटना या दर्शन, जिज्ञासा आकर्षण व उत्सुकता की चीज़ होती है उसे वे बिना लाग लपेट के प्रस्तुत करते ही हैं. यही स्थिति बुजुर्गों की भी है. वे अपने समय की घटनाओं को दोहराने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं. अवसर और पात्र मिलते ही वे उद्‌भट कथाकार बन जाते हैं.

कुछ लोग इसे किस्सागोई कहकर संबोधित कर सकते हैं पर मेरी दृष्टि में ये भी वे 'क्लूज़' हैं, जो कथाओं को काग़ज़ तक लाते हैं.

कभी-कभी व्यक्ति के मौन हावभाव भी कथाओं को कह देते हैं. सद्यःविवाहिता का लौटकर चमकीली आंखों से मां-बाप के चरण छूना एक कथा कहता है तो उसका रोते हुए आकर मां से चिपट जाना - एक अलग ही कथा व्यथा कहता है. इस अर्थ में कथाएं सदैव हमारे आसपास चलती फिरती रहती हैं. उन्हें केवल शब्दों के जामे की ज़रूरत होती है. जो जितना सहज इसे कर पाता है उतनी ही मार्मिक व ग्राह्य कथा जन्म लेती है. शायद यहीं कहीं नया कथाकार चूक रहा है. लेकिन यह भी सही नहीं है कि सभी चूक रहे हैं और यह भी कि इसके लिए क्या कथाकार अपनी ओर से कुछ जोड़े ही नहीं ?

नहीं ऐसा नहीं है. अतिसामान्यता भी अरुचि का कारण हो सकती है. उससे कोई दिशा निर्देश नहीं मिल सकता न समस्याओं का हल, न सुधार की गुंजाइशें. परंतु अति दुर्गति का सबब हो जाये इससे बचने की ज़रूरत तो है ही.

आज भी घटनाओं का क्रम अबाधगति से जारी है. लगता है प्रकृति, कथा कहानियों से ऊबी नहीं है. ऐस होता तो जीवन सपाट हो जाता और कहानियों पर विराम लग जाता. 'कथाबिंब' में प्रकाशित होने वाली कहानियां मरुथल में नख़लिस्तान का आभास देती रही हैं.

८६१ द्वारकापुरी, इंदौर ४५७ ००१

पुस्तक समीक्षा

जीवन के सहज क्रिया कलापों से संबद्ध कहानियां

✍ डॉ. अर्चना गौतम

निर्मोही (कहानी-संग्रह) : **ममता कालिया**,
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, दिल्ली मू. : १२५ रु.

ममता कालिया के 'निर्मोही' नामक कहानी संग्रह में कुल १७ कहानियां संग्रहीत हैं, जिनमें पारिवारिक संबंधों के समीकरणों को स्पष्ट करते हुए समाज की विविध समस्याओं एवं उनके समाधानों को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है. यदि देखा जाये तो इन कहानियों में कहीं नारी स्वतंत्रता अर्थात नारी मुक्ति का स्वर सुनाई देता है तो कहीं आर्थिक अभाव में मध्य वर्ग के परिवार की विवशता झलकती है और कहीं पीढ़ी अंतराल और कहीं महत्वाकांक्षी युवा वर्ग की अर्थ लिप्सा स्पष्ट दिखाई देती है. यदि इस कहानी संग्रह को जीवन के सहज क्रिया कलापों की अभिव्यक्ति कहा जाये तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी.

संग्रह की प्रथम कहानी 'निर्मोही' है, जिसमें रानी फूलमती और मालिन के बेटे कन्हैया के प्रेम की कहानी है. इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने स्पष्ट किया है कि प्रेम एक सहज अनुभूति है, जिसे केवल महसूस किया जा सकता है. यह प्रेमानुभूति ज़रूरी नहीं कि किसी सुख-सुविधा संपन्न परिवेश में पनपे, यह तो कन्हैया जैसे छोटे लोगों के पास ही होती है. सामान्य मनुष्य की भांति राजा भी अपनी पत्नी फूलमती को संदेह की दृष्टि से देखता है और उसे घर से निकाल देता है. इस कहानी में नारी स्वयं अपनी मुक्ति का मार्ग खोजती है. 'बाथरूम', 'मुन्नी', 'सवारी-सवारी' और 'वह बस में मिली थी' आदि कहानियों में भी नारी मुक्ति और उसके आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान की अनुगूंज सुनाई देती है. 'बाथरूम' कहानी की कांता मामी घर में बाथरूम बनाने बनवाने की जेहाद छेड़ती है, जिसमें उसे सफलता मिलती है. 'मुन्नी' की चेचक युक्त मुन्नी अपने अपमान और उपेक्षा का प्रतिकार अपनी क्लास की लड़की को डस्टर से मारकर पूरा करती है. हमेशा के लिए मुन्नी द्वारा स्कूल छोड़ना, अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठना ही है तथा अपने आत्म सम्मान की रक्षा करना है. 'वह बस में मिली थी' में तो एक ऐसी निडर नारी का चित्रण हुआ है, जिसमें आत्मविश्वास कूट-कूट कर भरा हुआ दिखाई देता है. वह स्पष्ट शब्दों में कहती है "आदमी जो नरम-गरम करें तो हम तो दे देइत है एक झन्नाटा कनपट्टी पै." 'सवारी-सवारी' में गणपत रिक्शा वाले के माध्यम से नारी मुक्ति की कामना की गयी है. गणपत महसूस करता है इतने अच्छे घरों में रहनेवाली, अच्छे कपड़े पहनने वाली लड़कियां भी आज़ादी के लिए तरसती हैं, जबकि गांव में उसकी बहनों के पास और कुछ हो न हो, टोले में घूमने फिरने की आज़ादी तो है. या हो सकता है वे भी अपने को गुलाम महसूस करती हों !

'नमक', 'बांगडू', 'पीठ', 'सिकंदर' आदि कहानियां जीवन के सहज क्रिया-कलापों पर आधारित कहानियां हैं, जिनसे भी लेखिका की सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय मिलता है. 'नमक' एक ऐसी मां की कहानी है जो सामान्य सी बीमारी से ग्रस्त है. किंतु अस्पताल में इलाज करवाते समय वह इस तथ्य को समझ जाती है कि हर मनुष्य को स्वयं अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए. 'सिकंदर' में एक मध्यम वर्गीय परिवार की दयनीय आर्थिक स्थिति को दर्शाया है और 'बांगडू' में एक नौकर के स्वाभिमान को उजागर किया है. 'पीठ' कहानी एक कलाकार की सफलता की गाथा है. लेखिका ने इसमें कला के प्रति समर्पित हर्ष की संकीर्ण-मनोवृत्ति को भी रेखांकित किया है. हर्ष मीडिया क्षेत्र में चीज़ों को प्रदर्शित करने का कार्य करने वाली, अपनी पत्नी इंदुजा पर संदेह करता है. गुस्से में हर्ष उससे कहता है तुम्हें प्रदर्शन का चस्का लगा है. बताओ दर्शन से तुम्हारा क्या रिश्ता है ? उसने कैसे जाना यह तुम्हारी पीठ है. हर्ष को जिस पीठ की तस्वीर के लिए पुरस्कार मिलता है उसे उसके दोस्त इंदुजा की पीठ मानते हैं. परंतु वह सत्य को स्वीकार करने की अपेक्षा (इंदुजा) अपनी पत्नी को ही भला-बुरा कहता है.

कालिया ने 'समय', 'पिकनिक', 'खान-पान' आदि कहानियों में आधुनिक युग की विसंगतियों को उद्घाटित किया है तथा इनसे उनके कथाबोध को भी विस्तार मिला है.

'समय' में आधुनिक युग के बढ़ते हुए मोबाइल फोन को लेकर लेखिका ने चिंता व्यक्त की है, क्योंकि यह किसी भी शुभ-अशुभ अवसर पर बोल उठता है. 'पिकनिक' में एक ऐसे युवक की मानसिकता को दिखाया है जो केवल अपनी पेप्सी कोल्ड ड्रिंक को ही सबसे अच्छा मानता है और नारियल पानी की उपयोगिता को नकारने से भी नहीं हिचकिचाता. वह ऐसा इसलिए करता है, क्योंकि वह पेप्सी का व्यापार करता है, जिसे वह बढ़ाना चाहता है. व्यापार बढ़ेगा तो आय बढ़ेगी. 'खानपान' में मीनाक्षी नामक लड़की को चित्रित किया गया है, जो डॉक्टर के कहने पर अंडा खाने का मन बनाती है, किंतु अपने रूढ़ संस्कारों के कारण खा नहीं पाती, क्योंकि उसके चतुर्वेदी परिवार में अंडा खाना तो दूर की बात है, अंडा और मांस खाने वालों के यहां रिश्ता भी नहीं करते. 'बोहनी' में व्यापारी वर्ग में व्याप्त रूढ़ मान्यता कि दुकान खोलने के बाद बोहनी होना आवश्यक है को दर्शाया गया है.

'उड़ान', 'समय' और 'पिकनिक' कहानियों में पीढ़ी अंतराल को अभिव्यक्ति मिली है. उड़ान में महत्वाकांक्षी साकी नामक

लड़के के माध्यम से लेखिका ने संकेत किया है कि आज की युवा पीढ़ी का अर्थ के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है. उन्हें विदेशों में अर्थ तो मिल जाता है पर संतोष नहीं मिल पाता. पैसों की ख़ातिर साकी बार-बार कंपनियां बदलने के साथ-साथ देश भी बदलता रहता है. वह अपने पापा से एक टूक कह देता है, पापा आपके ज़माने में ईमानदारी बहुत गुण माना जाता था: मेरे जमाने में समझदारी इससे बड़ा गुण है. और तो और वफ़ादारी, ईमानदारी अब इन्सानों की नहीं, कुत्तों की ख़ासियतें हैं और मैं किसी कंपनी का वफ़ादार कुत्ता कहलाना कभी पसंद नहीं करूंगा. ठीक इसी प्रकार 'समय' कहानी की बुढ़िया महत्वाकांक्षी युवा पीढ़ी से स्वयं को जोड़ नहीं पाती. परिणामतः उसके बच्चे विदेश में चले जाते हैं उसे अकेला रहना पड़ता है. वह अपने देश में ही रहकर अपने पुराने मकान को आधुनिकता की चमक-दमक से दूर रखने का प्रयास करती है. 'दल्ली' कहानी बूढ़ों के अंतरालों तथा यात्रा भवन की जर्जरता और वहां कार्यरत कर्मचारियों की अकर्मण्यता को प्रकट करती है. 'सुलेमान' कहानी नयी पीढ़ी के सपनों के ताने-बाने बुनने में सहायक सिद्ध हुई है. सुलेमान युवा पीढ़ी के लिए स्वयं तो कुछ नहीं करता पर आश्वासन अवश्य देता है. इस कहानी में सत्ता की स्वार्थपरता और जड़ता को इंगित किया गया है.

अतः कहा जा सकता है कि 'निर्मोही' कहानी संग्रह में संकलित कहानियां भले ही देखने में छोटी नज़र आयें, परंतु ये भी कहानियां अपने अंदर गूढ़ अर्थ संजोये हुए हैं. कहानियों की भाषा भी सरल है किंतु अपने पाठकों को प्रभावित करती है. कहानी संग्रह पठनीय है.

भारतीय फिल्म और टेलीविजन संस्थान,
ला कॉलेज रोड, पुणे - ४११ ००४

स्त्रीविमर्श के कथा-पड़ाव

बालेंदु शेखर तिवारी

पुंश्चली (कहानी-संग्रह) : वासुदेव
प्रकाशक : रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग,
पूर्णिया-८५४३०१ (बिहार)   मू. : ११० रु.

विघटन का गहन बोध इन दिनों की हिंदी कहानी का केंद्रीय स्वर बन गया है. इस दौर की तमाम चर्चित और अच्छी कहानियां विघटन और मूल्य स्थापन के संघर्ष से जूझती नज़र आती हैं. कमोबेश सभी भारतीय भाषाओं के कथा लेखन में यही स्वर प्रतिध्वनित है. विघटन चाहे आर्थिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, राजनीतिक किसी भी स्तर पर हो - उसके बहाने मनुष्य की संस्था का संकल्प इधर के कहानीकारों ने बार-बार दुहराया है.

वासुदेव की कहानियां भी अपवाद नहीं हैं. पहले 'इस जंगल के लोग', फिर 'नयी बहू की आंखें' और अब 'पुंश्चली' में संकलित उनकी कहानियां विघटन की व्यस्तताओं के बीच आत्मसजग मूल्यों की ओर इशारा करती हैं. उनकी कहानियों की ज़मीन अपने ही आस-पास की दृश्यावली है. तभी उनकी कहानियां सोच की जगह वर्णना, रूपक की जगह प्रश्न और भाषिक परिवेश के सन्नाटे की जगह वास्तविक जीवन संदर्भों की छटपटाहट को जगाती हैं.

'पुंश्चली' में एकत्र एक दर्जन कहानियां नारी केंद्रित हैं और इनमें अपनी ही नियति के पाश में जकड़ी औरतें चित्रित हैं. वासुदेव नारी-सौंदर्य के चितेरे हैं और उनकी नायिकाएं अधिकतर अपरूप सुंदरी हैं. 'अनाम रिश्ता' की देवी, 'कदली' की शोभा, 'पुंश्चली' की सरस्वती और पारिजात, 'सबूत' की सब्ज़ीवाली विधवा सबमें नारी सौंदर्य के सारे अवयव साकार होते हैं. 'अस्वीकृति का दंश' की नायिका की देह-सुषमा का वर्णन करते हुए वासुदेव ने लिखा है - 'मैंने एक बार ग़ौर से उसकी ओर देखा और देखता ही रह गया - गौरवर्ण, गोल मुंह, काली कजरारी बड़ी-बड़ी आंखें, घने लंबे बाल, लोचदार तराशी हुई देहयष्टि, मुश्किल से बीस-इक्कीस की उम्र, यौवन जैसे अभी उठान पर ही हो.' इन सौंदर्यमयी नायिकाओं को अपने आसपास पुरुषों की वासना दृष्टि का शिकार बनने से वासुदेव ने रोका नहीं है. इसीलिए इन कहानियों के पुरुष अधिकतर वासनालोलुप और लंपट हैं, जबकि स्त्रियां प्रतिकूल परिस्थितियों में भी संघर्ष करती हुई अपनी दृढ़ता का परिचय देती हैं. वास्तव में इस संग्रह की कहानियां विघटन के विरुद्ध मूल्य संरक्षण, स्त्री के पुंश्चलीपन के विरुद्ध पवित्र स्त्रियों के निर्माण से जुड़ी हैं. यही कारण है कि 'अनाम रिश्ता', 'अस्वीकृति का दंश', 'कदली', 'प्रेरणा', 'व्यामोह', और 'सुकन्या' जैसी कई कहानियों का अंत आदर्शवादी है. स्त्री की अदम्य जिजीविषा लगभग सभी कहानियों में उजागर हुई है. तमाम संघर्ष के बीच स्त्री की दृढ़ता का उदाहरण संग्रह की कहानी 'सबूत' पेश करती है.

'अनाम रिश्ता' इस संग्रह की पहली कहानी है, जो संयम के सहारे वासना की आंधी को राखी की वचनबद्धता तक पहुंचाती है. 'अस्वीकृति का दंश' की नायिका भी अपने श्वसुर तक की लोलुप दृष्टि को झेलती है. यह उस संदेही समाज की कहानी है, जिसमें स्त्री-पुरुष की स्वाभाविक बातचीत भी अनेक संदेहों और क़िस्सों को जन्म देती है. 'कदली' दुर्घटनावश विकलांग हो गये नायक पर न्यौछावर शोभा की कहानी है, क्योंकि कदली जीवन में एक ही बार फलती है. इसकी तुलना में, 'कागा सब तन खाइयो' एक औसत त्रासद प्रेमकथा है. 'दीदी' और 'पुंश्चली' दोनों कहानियों की नायिकाओं का नाम सरस्वती है. सुरसतिया से डॉ. एस. भारती बन जाने पर सरस्वती के पास

गांव से आये मोहना और उसकी मां के लिए समय कहां है ? 'दीदी' गरीबों के मोहभंग की कहानी है, जबकि 'पुंश्चली' साहित्य के शिखर पर पहुंचने के लिए अपनाये जा रहे अनैतिक रिश्तों के समानांतर पारिवारिक बिखराव की कहानी भी है. कथा कहने के पुराने शिथिल अंदाज़ की यह रचना 'दीदी', 'साये में धूप', 'सबूत' की अपेक्षा कमज़ोर है. शायद इस संग्रह का नामकरण 'सबूत' या फिर 'अनाम रिश्ता' होना चाहिए था. वासुदेव का संकल्प निश्चय ही पुंश्चली की जगह पवित्र और संघर्षी स्त्रियों की वकालत करना है. इन कहानियों में विविध स्तरों पर एक अभिप्राय के रूप में यह स्थापना इतनी आवर्ती है कि यही इन कहानियों का केंद्रीय अनुभव-मर्म बन गया है. विधि और विडंबना से जूझती स्त्रियों के बहाने कहानीकार वासुदेव ने नारी-जीवन के बहुस्तरीय चित्र उपस्थित किये हैं. 'मां और मां' में मातृत्व के विभिन्न व्यवहारों की प्रस्तुति है, तो 'व्यामोह' में माधवी, चंदन और आंसूदा की त्रिकोणात्मक कहानी के बहाने असंतुलित दांपत्य की मजबूरियों से घिरी पत्नी और प्रेमिका की पीड़ा अंकित है. 'प्रेरणा' पहली नज़र के प्रेम की लगभग फिल्मी कहानी है, जिसका विकास उत्तर बौद्धकाल की एक प्रेमकथा की ज़मीन पर सरला और जावेद के अंतःसांप्रदायिक मिलन के रूप में हुआ है. 'सबूत' इन सबसे अधिक धारदार कहानी है जो सब्जीवाली विधवा पर लोलुप नज़र डालने वाले पुरुष की वास्तविकता का बयान करने के साथ ही साथ हमारे दौर की स्त्रियों के दृढ़ संघर्ष को भी उजागर करती है. 'साये में धूप' भी इस संग्रह की एक प्रशंसनीय रचना है, जिसमें कुर्बान मियां और उनकी बेटी सफ़ीना से जुड़े प्रसंगों के बहाने कथाकार ने राहत कार्य में स्वार्थी तत्वों की घिनौनी उपस्थिति के चित्र उभारे हैं. संग्रह की अंतिम कहानी 'सुकन्या' दहेजलोलुप अवसरवादी समाज पर एक सजग तमाचा है, जिसे पढ़ते हुए रामकुमार वर्मा के सुख्यात एकांकी 'रीढ़ की हड्डी' का सहसा स्मरण होता है.

'पुंश्चली' में एकत्र सारी कहानियां कथ्य और संकल्प की दृष्टि से लगभग सहोदरा हैं. इनके माध्यम से वासुदेव के कथास्तर के विस्तार का अहसास होता है. भाषा की दृष्टि से भी वासुदेव में लगातार प्रौढ़ता आयी है, लेकिन अभी भी उनकी असावधानी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है. सावधान होते तो 'अनाम रिश्ता' में मंडा पूजा के अवसर पर फूलरबुंदी करने वाली अनपढ़ देवी 'अपराध बोध' और 'वासना का रौरव नरक' जैसे शब्दों के प्रयोग से बचती. ऐसी कुछ भाषिक असावधानियां अन्यत्र भी हैं, लेकिन इससे कहानीकार वासुदेव का महत्त्व कम नहीं होता. 'पुंश्चली' में एकत्र उनकी कहानियां अपने समय में मौजूद स्त्रियों के सामाजिक सच को उपस्थित करती हैं. कहीं अतिशय आदर्श, कहीं अतिरिक्त अतिशयोक्ति, कहीं देह सौंदर्य, कहीं यौन लोलुपता और कहीं समस्याओं से घिरे प्रसंगों के परिपार्श्व से कहानीकार ने स्त्री की दृढ़ता के विविध स्वरों को ही विभिन्न रूपाकारों में उकेरा है. बदले हुए समय में कैसी कहानियां लिखी जायें, इसे वासुदेव की अधिकांश कहानियां सूचित करती हैं.

६, शिवम, हरिहर सिंह रोड,
मोराबादी, रांची-८३४ ००८

स्मृतियों के कोलॉज

शैलजा नरहरि

जहां मुनाफ़ा सब कुछ हुज़ूर (काव्य) : **श्री कुंतल कुमार जैन, प्रकाशक** : सन्मति प्रकाशन, नरेंद्र सदन, ४ माला, ३६ डी मुगभाट, क्रास लेन, ठाकुरद्वार, मुंबई-४०० ००४. मू. : ३०० रु.

'कोलॉज' एक पाश्चात्य चित्र शैली का नाम है. इस शैली के अंतर्गत भिन्न-भिन्न रंगीन काग़ज़ के टुकड़ों को जोड़कर एक नया प्रारूप दिया जाता है, जिसको देखकर बनाने वाले और देखनेवाले दोनों के मन में नये नये स्मृति बिंब उभरते और मिटते रहते हैं. मैंने महसूस किया है कि स्मृतियों के भी कोलॉज होते हैं. श्री कुंतल कुमार जैन का काव्य संग्रह भी मुझे प्रथम दृष्टया ही स्मृतियों का कोलॉज लगा. जीवन के असीम बहु-आयामी स्पंदनों को मन की गहराइयों तक स्पर्श कर, बिना किसी ताम-झाम के कम से कम शब्दों में पिरोकर काव्य रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है उन्होंने.

"सौंदर्य देखने वाले की दृष्टि में होता है", बचपन से सुनती रही हूं. कविता भी पढ़ने वाले के मन में ही होती है. जैसा मन होता है कविता वैसी ही सुनाई या दिखाई देती है. मूढ़ तो संवेदनाशून्य होता है. अच्छी से अच्छी कविता को उस व्यक्ति को दिखाकर या सुनाकर क्या लाभ जिसने कवि मन नहीं पाया हो. पढ़ने वाला चाहे कविता लिखता न हो परंतु वह चाहे अनचाहे कविता गढ़ता रहता है और जब उसे वैसा कुछ पढ़ने को मिल जाये जो उसने सोचा हो, तो उसकी संवेदना और अनुभूति कवि के साथ लिखती-पढ़ती और गाती है.

संग्रह की सभी कविताओं को जी कर लिखा गया है. इसीलिए कविताओं को हम धूप, सूरज, चांदनी, मोम, दिल, सांझ, सबेरे, दिन और रात से अलग मजबूर मज़दूर, बाज़ार, व्यापार, फैक्ट्री, लोहा, सीमेंट, खिड़की, दरवाज़े, आंगन, दालान, पीपल, नीम सभी के आस-पास देख सकते हैं.

कुंतल कुमार जैन की कविता उनके साथ-साथ सफ़र करती है. दिन रात गुज़रती है और व्यापार करती है, समझौते करती है, सहन करती है, क्षमा करती है और कभी-कभी उन्हें अपने हाल पर छोड़ भी देती है. उनकी कविताएं किसी बंधन में

नहीं हैं, अनुशासन को कम मानती हैं. कभी शैतान बच्चे की तरह हैं, कभी बूंदों की तरह झुंझलाती हैं, कभी आईने में अपने रूप को संवारती हैं तो कहीं कारोबार पर निकल पड़ती हैं.

कुंतल कुमार जैन का काव्य संग्रह हाथ में लेते ही आप चौंके बिना नहीं रह सकेंगे. पांच सौ रुपये के नोट की पृष्ठभूमि पर क्रांतिकारी शीर्षक जो नये युग का प्रतिनिधित्व करता है, "यहां मुनाफ़ा ही सब कुछ हुज़ूर" आधुनिक युग का यह सच झकझोरता है. मुनाफ़ा एक धुरी की तरह काम कर रहा है जहां यह सब है वहां सब कुछ सुचारु रूप से चल रहा है और जहां ये नहीं है वहां सब कुछ थमा हुआ है. सारे रिश्ते सारी संवेदनाओं के संवेग इसी रस से आप्लावित हैं अन्यथा सब कुछ सूखता जाता है. चाहे वह आंख के आंसू हों या धमनियों में प्रवाहित रक्त. हर रिश्ते को किसी संबंध, दोस्ती या दुश्मनी को आदमी मुनाफ़े की शर्तों पर ही जी रहा है. प्यार की गर्मी पीढ़ी दर पीढ़ी बिना शर्त के नहीं सौंपी जा रही है. आदमी स्वयं निश्चित करता है कहां-कहां मुनाफ़ा है. यह मुनाफ़ा व्यांपार की परिधि से निकलकर, जीवन के हर चक्र में शामिल हो गया है. वही चक्र है जिसके आधीन होकर हर आदमी घूम रहा है.

पुस्तक का समर्पण लीक से हटकर 'दोस्तों के नाम भी, दुश्मनों के नाम भी'. वैसे भी दुश्मनी की गांठ दोस्ती की गांठ से अधिक मज़बूत होती है. सीधी दुश्मनी, चेहरा पहने हुए दोस्त से अधिक मुनाफ़े वाली लगी कुंतल कुमार को. कुंतल कुमार अपने विषय में लिखते हैं : - "बस वही कुंतल कुमार है/जो/अपने स्वभाव में/आइने की तरह/बिंबरहित है/हस्तक्षेप रहित है/जो/प्रत्येक आग में/कोयले की तरह/आनंद पूर्ण होता/हुआ जला."

उन्हें व्यवस्था के प्रति आक्रोश है. वो बहुत कम शब्दों में व्यक्त करते हैं : "रो सको बरसों तक/इतना ग़म है/कौन कहता है/व्यवस्था कम है."

आदमी अपने लालच की वजह से जिस शर्मिंदगी को अपना प्रारब्ध मान रहा है उसे रेखांकित करने वाली यह पंक्तियां देखिए - "कुत्तों ने/सोने के सुहाने पट्टे बनवाये/हैं/ मनु की ललचायी हुई/गर्दनों में/डालने के लिए."

प्रकृति और पुरुष चेतना और अचेतन में किस तरह की त्रासदी से गुज़र रहे हैं - "एक पेड़/अपने एकांत में/बादल/खाली हो जाने के बाद/नहा रहा है/रुकी हुई बारिश में."

'यह बिना काग़ज़ लिखना, कौन जानता है उसके सिवा,' एक लंबी कविता है उसमें लिखे हुए से अधिक प्रभावशाली वह सब कुछ बोलता है जो लिखा नहीं गया है. ऐसी लंबी कविताओं की संख्या बहुत अधिक है. दिवंगता बहन से संवाद न कर पाने की पीड़ा अंतस को भिगो जाती है. इस कविता के कुंतल कुमार मोम से पिघले हुए कुंतल कुमार हैं. यहां उनमें बेबाकी, खिलंदड़ापन या लापरवाही दूर-दूर तक नज़र नहीं आती है.

'अनंगोत्सव', 'शरीरोत्सव', 'पिया बिन' आदि कविताएं, कविताओं का वह बयान हैं जिनका शरीर भी होता है और वह अपने शारीरिक वक्तव्य को अपने आप कवि की क़लम से लिखवा लेती हैं.

एक बहुत ख़ूबसूरत और बेहद महीन, नाज़ुक कविता है, 'तितली में पिन' सौंदर्य और कोमलता का बहुत सुखद स्पर्श जो संवेदना के हर अछूतेपन को बहुत गहरे तक छूता है.

'माचिस रखो जेब में,' 'सतत सूली', 'कोख़ विसर्जन' आदि कविताएं कवि के आक्रोश को चटख़ रंग देती हुई इस तरह प्रकट हुई हैं कि पाठक मन की गहराई तक उद्वेलित होता है और कुछ न कर पाने की कुंठा में बहुत देर तक अपने को ठगा सा महसूस करता है.

कविता संस्कारों से जन्म लेती है. परिवार से मिली ऊर्जा से संवरती है. लेकिन जिस कवि ने अपनी पांडुलिपि को पिता के द्वारा सिगड़ी पर जलते देखा होगा उसके हृदय के फफोले जीवन भर टीसते रहे होंगे, उन पर मरहम लगाने के लिए कविता ने कुंतल कुमार का हाथ पकड़ा है. उन्हें सहारा दिया है. उन्हें जिजीविषा दी है. इन्हें एक संवेदनशील बेहतर इंसान बनाया है वह दृष्टि दी है जो हर आवरण को हटा कर सूक्ष्म से सूक्ष्म को स्पष्ट से स्पष्ट तर और स्पष्टतम तक ले जाती है. अभिव्यक्ति के इस माध्यम से जहां कवि का व्यक्तित्व संवरा है वहां उन्होंने अपने आपको उदारता के उस शिखर पर बैठा दिया है जहां तक पहुंचने का साहस विश्व के किसी कवि ने आज तक नहीं किया. उन्होंने अपने इस कविता संग्रह के कॉपी राइट अधिकार बिना किसी आग्रह या दुराग्रह के हर कविता प्रेमी को सहज समर्पित कर दिये हैं. दोनों हाथों से अपने काव्य धन को उलीचने का यह पुण्य सुख कवि ने लिया है. यह औदार्य उन्हें अगले वर्षों में और अधिक ऊर्जावान और सशक्त बनाकर नयी और सुंदर रचनाओं का रचनाकार बना कर प्रस्तुत करेगा.

प्रस्तुत काव्य संग्रह जीवन की प्रदर्शनी है जिसमें भिन्न-भिन्न ख़ानों में जीवन के परिदृश्य स्पष्ट होते हैं. छोटी-बड़ी कविताएं कहीं चुभती हैं, कहीं सहलाती हैं, कहीं उद्वेलित करती हैं. मन की गहराई तक कभी-कभी हवा के झोंके की तरह स्पर्श करके निकल जाती हैं, तो कहीं चट्टान की तरह सामने आकर खड़ी हो जाती हैं. जिनके आगे निकलने के सभी मार्ग बंद होते चले जाते हैं. कुछ कविताएं ऐसी भी हैं जिनके दरवाज़े खुलते और बंद होते हैं. पाठक उनके आर-पार आता जाता है.

अंत में "यहां मुनाफ़ा ही सब कुछ हुज़ूर" कविता के प्रेमियों, पाठकों, दीवानों, आलोचकों, प्रशंसकों, मित्रों और कवि के अपनों के लिए मुनाफ़े का ही सौदा है. पढ़ लीजिए नुकसान नहीं होगा क्योंकि यहां मुनाफ़ा ही सब कुछ है हुज़ूर.

'श्रीपाल-वन' नं.१, सी-विंग/जी-१०,
खारोडी नाका, विरार-४०१ ३०३ (महाराष्ट्र)

संवेदनाओं के स्वर

✍ डॉ. शरद पगारे

तीसरा पड़ाव (कहानी-संग्रह) : मंगला रामचंद्रन
प्रकाशक : रामकृष्ण प्रकाशन, सावित्री सदन,
तिलक चौक, विदिशा (म. प्र.) मू. : ८५ रु.

बदलती परस्थितियों, तेज़ी से बदलते परिवेश और संदर्भों से कहानी को गुज़रना पड़ा है. उसने इनके दबावों को महसूस ही नहीं किया वरन अभिव्यक्ति भी दी है. परिवार के आस-पास केंद्रित प्रेमचंद युगीन कहानी को उत्तरकालीन कथाकारों ने बाहर की दुनिया की सैर करायी. नारी-पुरुष के अंतर-संबंधों की जांच पड़ताल तो की ही, यौन वर्जनाओं की लक्ष्मण रेखाओं का भी उल्लंघन किया. विशेष कर नारी लेखिकाओं ने इस क्षेत्र में विद्रोह का झंडा फहराया. दीप्ती खंडेलवाल, मृदुला गर्ग, जया जादवानी, कृष्णा अग्निहोत्री, चित्रा मुदगल, मैत्रेयी पुष्पा आदि की कहानियां और उपन्यासों में नारी विद्रोह के तेवरों को देखा जा सकता है.

परिवार को पूरी तरह से ख़ारिज नहीं किया जा सका. क्योंकि उसकी उपस्थिति शाश्वत और सनातन है. आज भी वह जीवन की धुरी है. उसके बिना जीवन और अनुभव संभव नहीं. चाहे वह एकल परिवार हो या संयुक्त. परिवार के सदस्यों के अंतर संबंधों, घात-प्रतिघात, पारिवारिक राजनीति की पड़ताल महत्वपूर्ण स्थान रखती है. परिवार की ओर पुनः लौटी कहानियों में इसे देखा जा सकता है. पारिवारिक जीवन के अनुभवों से गुज़र कर उन्हें रेखांकित करना भी कहानी का फर्ज़ बनता है. परिवार मानवीय संवेदनाओं की पाठ्शाला है. मालती जोशी, लीला रूपायन, शशिप्रभा शास्त्री, चंद्रकांता, मेहरुन्निसा परवेज़, मन्नू भंडारी ने परिवार केंद्रित मनोहर कहानियां लिखी हैं. मंगला रामचंद्रन के "तीसरे पड़ाव" को भी इसी क्रम में रखा जा सकता है. परिवार के साथ ही कथा नायिकाओं का मनोविश्लेषण और आपसी रिश्तों का पुनर्मूल्यांकन ये कहानियां करती हैं.

परिवार के लिए परिस्थितियां और आपसी रिश्ते दिन प्रतिदिन असामान्य होते जा रहे हैं. इसके बावजूद परिवार आज भी ऊर्जा प्रदान करता है. परिवार में भी आपसी रिश्तों के अनेक स्तर हैं. परिवार के अंदर के रिश्तों में भी राजनीति खेली जाती है. 'दाग़' कहानी इसका सशक्त उदाहरण है. यह संकलन की अंतिम कहानी है जिसमें लेखिका ने भोगी हुई ज़िंदगी की तस्वीर पेश की है. पति ईमानदार पुलिस अधीक्षक की भोली भाली पत्नी को मातहत किस प्रकार से शिकार बनाते हैं, यह कहानी उसका दर्पण है.

परिवार के महत्व को न केवल मंगलाजी ने जान समझ लिया है - इसीलिए "तीसरा पड़ाव" की अधिकांश कहानियां इस तथ्य को शिद्दत से उजागर करती हैं. हम संकलन की पहली कहानी 'स्पर्श' पर लौटें. मानव और पशु का संवेदनात्मक अंतरद्वंद्व कहानी का मुख्य केंद्र बिंदु है. स्वल नामक कुत्ता पाला जाता है. दादी मां सावित्री उसे नापसंद करती है. सावित्री की अव्यक्त भावनाओं की मुखरता को स्वल समझकर उनसे दूर रहता है और जब वे उससे रिश्ता जोड़ना चाहती हैं तो वह दूर से उसे निबाहता है. भावनाओं के द्वंद्व पर आधारित यह कहानी अत्यंत मर्मस्पर्शी है. जिसमें पशु प्रेम के प्रति सावित्री का नज़रिया बदलता है.

'रसना का रास' - वृद्धावस्था की खाने पीने की पिपासा का बेबाक चित्रण है. जीवन की तृष्णा बढ़ती आयु में भी किसी बंधन को स्वीकारने को तैयार नहीं है. उस तृष्णा की पूर्ति के लिए बहाने तलाशती है. अगली कहानी 'जंग' है. नारी-पुरुष के सनातन रिश्तों की पड़ताल करने वाली कहानी वंदना-राहुल-संजय के त्रिकोण पर तो आधारित है ही वहीं वह नारी मन के रहस्य का भी पोस्टमार्टम करती है. राहुल का निर्दय, ह्रदयहीन जंगली व्यवहार और संजय के शालीन उदार व्यवहार के मिश्रित रूप को चाहना ही वंदना की त्रासदी है. वंदना दूसरा विवाह दुजवर संजय से करती है. यह बात समझ में आने लायक़ नहीं है. आज का पुरुष इतना उदार है कि वंदना को कुंवारा पुरुष भी ब्याह सकता था. संजय का दुजवर होना ज़रूरी नहीं है. फिर भी नारी मन की उलझी गुत्थियों को कहानी मनोवैज्ञानिक स्तर पर सफलतापूर्वक हल करती है.

'सास भी जली' में जहां सास के जीवन की विसंगति की चर्चा की गयी है वहीं 'शंका का वृक्ष' की नायिका शारदा निराशावादी होने से हर छोटी-बड़ी बात व्यवहार और समाचार पर शंका के भयों से भयभीत रहती है. काल्पनिक भय ने उसके जीवन की सुख शांति हर ली और जब शंकालु डरी शारदा आशावाद को अपना लेती है तो जीवन का सकारात्मक पक्ष परिवार में सुख शांति की सृष्टि करता है. कुंठा से मुक्ति की कथा व्यथा है यह कहानी 'कौन अपना कौन पराया' पुनः परिवार की ही कथा है. रक्त संबंधों के बीच आर्थिक पहलू महत्वपूर्ण हो उठे हैं.

प्रेम की नयी परिभाषा नये अर्थ में दी गयी है. मराठी के प्रसिद्ध कथाकार और ज्ञानपीठ पुरस्कार से नवाज़े गये श्री वि.स. खांडेकर ने 'मोगरा फुलेला' में प्रेम की व्याख्या करते हुए लिखा है, 'मनुष्य जब जब आत्म-प्रेम का कवच तोड़ बाहर की दुनिया से एक रूप होता है तब तब प्रेम का सच्चा अर्थ उस पर प्रगट होता है.' इसी थीम पर कथा बुनी गयी है. "जड़ें" में अमेरिका में बसे प्रवासी भारतीय परिवार के मुखिया की वृद्धावस्था में घर भारत लौटने की तीव्र अभिलाषा है तो जड़ से कटे बच्चों की जड़ें विदेश में जमी होने से परिवार में एक नये विश्लेषण की बुनावट

कहानी में है. 'मन अभी भरा नहीं' दो विपरीत मनोवृत्ति की बहनों - राधा-सुधा का मनोविश्लेषण है. जहां राधा पारिवारिक रिश्तों के भावनात्मक संबंधों को अधिक महत्व देती है, वहीं सुधा के सोच की नींव आर्थिक लाभ पर खड़ी है. महाकवि रविंद्रनाथ टैगोर ने भी दो विपरीत ध्रुवों की मानसिकता वाली बहनों की कहानी प्रस्तुत की है. 'नाजुक रिश्ते' परिवार के बिखरते और उसे जोड़े रखने के प्रभा के प्रयत्न की कथा है. पिता के विदेश चले जाने पर मां पर पड़े पारिवारिक बोझ, उसके जीवन की त्रासदी से सबक़ लेकर नायिका प्रभा पति के साथ बच्चों को लेकर विदेश जाने को तत्पर हो जाती है.

संग्रह की समस्त बारह की बारह कहानियां पारिवारिक जीवन के विभिन्न और बहुरंगी पहलुओं को पेश करती हैं. 'तीसरा पड़ाव' की लेखिका पर एकरसता का आरोप चस्पा नहीं किया जा सकता है. प्रत्येक कहानी नये नायक, व नायिका की मानसिकता का मनोविश्लेषण और पुनर्मूल्यांकन करती है. पछतावा संग्रह की कहानियों का स्थायी भाव नहीं है. पछतावा पाप बोध से छुटकारा पाने ओर मुक्त होने वाली प्रक्रिया है. ऐसा कुछ भी किसी पात्र के साथ जुड़ा नहीं है. परंतु कहानी जिस तेज़ी से समय को अतिक्रमित करती है वह निश्चय ही कथा की गहराई को नापने की कमज़ोर कड़ी सिद्ध होती है. यह गहराई को पकड़ नहीं पाती. परंतु जिस रचना कौशल का परिचय मंगला जी ने दिया है वह स्तुत्य है. परिवार, आपसी रिश्तों, आर्थिक विसंगतियों और उसके बढ़ते प्रभाव को रेखांकित कर लेखिका परिवार को कथा के केंद्र में लाने में सफल हुई है.

'सुमन कुंज', ११०, स्नेह नगर,
नौलखा, इंदौर-४५२ ००१.

जटिल स्थितियां, भयावह यथार्थ और मानवीय संवेदनाएं

कमल चोपड़ा

चन्ना चरनदास (कहानी-संग्रह) : बलराम अग्रवाल
प्रकाशक : प्रखर प्रकाशन, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२. मू. : १५० रु.

परिवर्तन जो बेहद तेज़ी से हमारे जीवन और समाज में आया है, इस परिवर्तनशीलता की पकड़ एक सजग और समर्थ रचनाकार के लिए अनिवार्य सी है. परिवर्तनशीलता की पकड़ रचनाकार की सोच के साथ-साथ उसके कथ्य और शिल्प को भी प्रभावित करती है.

'चन्ना चरनदास' बलराम अग्रवाल का कहानी संग्रह है जिसमें उनकी २००३ तक की लघुकथाएं भी शामिल हैं, जिनमें परिवर्तनशीलता की पकड़ को साफ़-साफ़ रेखांकित किया जा सकता है. इसे लेखक की रचनात्मकता का अगला क़दम कहा जा सकता है. ये लघुकथाएं समकालीन जीवन के छोटे-छोटे अक़्सों, मनःस्थितियों, प्रसंगों और अनुभवों से जुड़ी हुई हैं. इन लघुकथाओं में लेखक ने मनोवैज्ञानिक गहराइयों में उतरने और दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया है. कुछ लघुकथाएं मनोवैज्ञानिक केसेज़ की तरह लगती हैं. उनकी बौद्धिकता बेधक और पैनी है. एक तरह की सूक्तिपरक दार्शनिकता भी इन रचनाओं में उभरी है.

बलराम अग्रवाल किसी प्रश्न, समस्या या विचार को केंद्र में रखकर, सामाजिक स्थितियों से उसे जोड़कर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परखते हैं और मानवीय संवेदना के साथ जोड़ने का प्रयास करते हैं.

इस संग्रह की कहानियां और लघुकथाएं अपनी संरचना में एक समानता लिये हुए हैं. आकारगत लघुता लघुकथा के लिए अनिवार्य-सी है. मोटे तौर पर जिससे कहानी और लघुकथा में भिन्नता आती है. इस संग्रह की कुछ लघुकथाएं अपनी इस विशेषता को अतिक्रमित करते कन्फ्यूजन पैदा करती हैं. आम पाठक यह समझ ही नहीं पाता है कि वह लघुकथा पढ़ रहा है या कहानी ! बलराम अग्रवाल की लघुकथाएं इकहरी और एक आयामी नहीं हैं. यह इनकी एक ख़ास विशेषता है.

आज के बर्बर, अमानवीय संवेदनशील, असहिष्णु और स्वार्थी होते जा रहे समाज में मानवीय मूल्यों की रक्षा और स्थापना इन लघुकथाओं की मुख्य चिंता है. ये लघुकथाएं मानसिक दबावों को झेलते ऐसे पात्रों की हैं जो अपने साथ-साथ दूसरों के मनोभावों, अहसासों और वेदना को मानसिक स्तर पर बांटने की कोशिश करते हैं.

'अकेले भी घुलते होंगे पिताजी' में पिता की पगड़ी पहनने के बाद पुत्र के द्वारा झेली गयी परेशानियों, तकलीफ़ों का हल खोजने के लिए घुलने और जूझने के अहसास का चित्रण है.

पिता की भौतिक सेवा से आगे बढ़कर उनकी पीढ़ी द्वारा अधूरे छोड़े गये कामों को पूरा करना ही उनकी सच्ची सेवा हो सकती है - ('पिताजी ने कहा था').

'झिलंगा' में इस सत्य को उद्घाटित किया गया है कि जिन चीज़ों को सहेजने के लिए इंसान जीवन भर दूसरों की सुख-सुविधा का भी ख़्याल नहीं रखता, उसे वह प्रिय वस्तु न केवल छोड़कर जानी पड़ती है, बल्कि बाद में दूसरों को उसे फेंकने के लिए विवश होना पड़ता है. बारी किसकी होती है, जाना किसे पड़ता है. अम्मा का विलाप झकझोरने वाला है.

'धागे' लघुकथा में बुआ का अपने भतीजे में अपने बड़े भैया की छवि देखने और स्नेह तलाशने का संवेदनात्मक चित्रण है.

'दुख के दिन' में बंटवारे का दुख झेलती और अपने उस दुखड़े को बहते पानी के आगे रोती मां का मर्मस्पर्शी चित्रण है.

'लेकिन सोचो' में पति द्वारा अपनी पत्नी को आर्थिक दबावों के चलते अन्याय और शोषण से सीधे न टकराकर हथियार फेंकने या स्थितियों को चालाकी से निबटने का हल सुझाये जाने का चित्रण है.

राजनीति के घिनौने चेहरे, कुत्सित चालों, स्वार्थलिप्सा और जनविरोधी हरकतों को लेखक ने अपनी रचनाओं में बख़ूबी उद्‌घाटित किया है.

'धुआं' लघुकथा में न्याय मंदिर और न्याय दंड पर मूतने वाले राजनैतिकों और न्याय की रक्षा न कर पाने की विवशता और मन के धुएं को शराब पीकर झेलते एक कांस्टेबिल का चित्रण पुलिसकर्मी की एक मानवीय व राष्ट्रधर्मी छवि की प्रस्तुति है.

'डरते वे भी हैं' चुनावों के दिनों में वोटों की गिनती के अनुसार बंटती शराब और ग़रीब की हाय से डरने वाले छुटभैयों का चित्रण है. 'अंधे लोग, बहरे लोग' में आंदोलनकारियों द्वारा अपने ही कंधों पर उसी को ढोये लिये जाने का चित्रण है जिसके लिए वे दूसरे को मार डालना चाहते हैं. यह अंधे अनुयायियों के अंधे बहरेपन पर गहरा कटाक्ष है.

'निवारण' लघुकथा में अपने पिता के राजनैतिक स्वार्थों हेतु संकट को टालने के लिए 'एकता ही बल है' के विपरीत गठबंधनों को खोलने और जनता के बल को तोड़ने और बांटने की घिनौनी साजिश को बेपर्दा किया गया है.

'सनातन' उन अनुशासनहीन लोगों की कथा है जो किसी ईमानदार परिश्रमी और अनुशासनप्रिय व्यक्ति को न गंभीरता से लेते हैं न उसकी मनोव्यथा को समझ पाते हैं. सनातन की चिंता उनकी ग़ुलाम मानसिकता है. हम आज़ाद कब होंगे ? वह पूछता है.

ये लघुकथाएं एक तरफ़ व्यवस्था का प्रतिकार करती हैं और दूसरी तरफ़ मानव को उसकी गरिमा के साथ प्रतिष्ठित करनें का प्रयास भी. निश्चित रूप से यह दुर्योग है कि आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी झुग्गियों और इमारतों में फ़र्क ज़मीन-आसमान की तरह बढ़ा है ('जहां मैं खड़ा हूं'). दहला देने वाले फ़र्क के बावजूद यह आशान्वित करता है कि अमीर बच्चों के मन में मानवीय संवेदना अब भी जीवित है.

'यह कौन सा मुल्क है' में यात्री द्वारा देखे गये भयावह दृश्य का चित्रण है. इन जाने पहचाने दृश्यों को देख-पढ़कर आसानी से समझा जा सकता है कि यह कौन सा मुल्क है जहां एक शख़्स पूरा इंसान नहीं है.

लेखक इस बहुमुखी यथार्थ को मनोवैज्ञानिक स्तर पर मानवीय संवेदना का हिस्सा बनाकर प्रस्तुत करता है. जहां भी

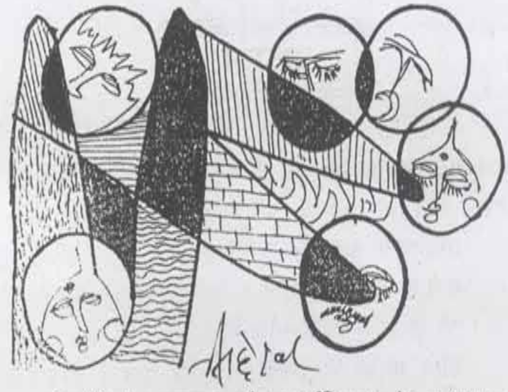

लेखक ने फैंटेसी, कल्पना और दार्शनिकता के माध्यम से अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया है, वहां-वहां रचना की ग्राह्यता और संप्रेषणीयता में बाधा आयी है. रचना अर्थपूर्ण होते हुए भी अस्पष्ट रह गयी है. ऐसी लघुकथाओं के पात्र अपनी समस्याओं में खोये-उलझे हुए हैं जो निरंतर लड़ते-जूझते दिखाई पड़ते हैं. कुछ पात्र अपनी सोच और व्यवहार के कारण अपने में कुछ विशिष्टता लिये हुए हैं.

अशक्त और निराश पात्र भी हैं जो निरंतर उपेक्षा झेलते-झेलते व्यर्थता बोध के शिकार होकर अपने आपको 'कूड़ा' समझने लगते हैं. ('कूड़ा' का 'ग्रामीण'). विषमताओं के प्रति आक्रोश से भरा पात्र भी है ('जहां मैं खड़ा हूं' का 'मैं'). 'देह और उसकी गंध' में लेखक स्वयं उपस्थित है. तन की सुंदरता से अधिक व्यवहार और मन की सुंदरता खोजता हुआ लड़का है जिसके मन और नज़रों में गंदगी नहीं जिसे कि लड़की नहीं समझ पाती ('सुंदरता'). कुछ खंडित व्यक्तित्व वाले पात्र भी हैं और कुछ स्वयं को परिस्थितियों के हवाले किये रहते हैं. जो हो रहा है उसे ज्यों का त्यों स्वीकार करते हुए ('लेकिन सोचो' का पति, 'डरते वे भी हैं' का वीरू, 'धुआं' का शंकर) भावनाविहीन और संवेदनहीन आधुनिक पात्र भी हैं जिनके लिए प्रेम सिर्फ़ सौदेबाज़ी और डेटिंग भर है ('मुलाकातें' के प्रेमी-प्रेमिका).

लेखक ने पात्रों के मन में झांकने, मनःस्थितियों को भांपने और मनोभावों को क़ाग़ज़ पर उकेरने का प्रशंसनीय प्रयास किया है. वह भाषा और शिल्प के प्रति अतिरिक्त रूप से सजग है. सुगठित वस्तु शिल्प इन लघुकथाओं की पहचान है. इस कारण वह इन लघुकथाओं को स्फीति से बचाकर अर्थगर्भित और सांकेतिक बनाने में सफल रहा है.

बलराम अग्रवाल की लघुकथाएं पूरी 'एक कहानी' का सा प्रभाव लिये हुए हैं और उनकी ये लघुकथाएं उनकी कहानियों से अधिक पैनी और बेधक है. इसलिए 'चन्ना चरनदास' एक महत्वपूर्ण पुस्तक है.

१६००/११४, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५

कौन

✍ प्रेम प्रकाश चौबे 'प्रेम'

आज अचानक आ बैठा ये, कौन अकेलेपन में मेरे,
किसने छेड़ी तान सुरीली, मन के सूनेपन में मेरे.
याद आया इक गीत पुराना,
गाने वाला, मीत पुराना.
जो कानों में शहद घोल दे,
मीठा सा संगीत पुराना.
याद का पंछी कैसे आया ? मन के नील गगन में मेरे,
किसने छेड़ी तान सुरीली, मन के सूनेपन में मेरे.
मन मदहोश हुआ जाता है,
सन्नाटा जैसे, गाता है.
कौन जगाकर थपकी मुझको,
हौले-हौले दे जाता है.
महक उठा चंदन वन कैसे ? उजड़े मन-उपवन में मेरे,
किसने छेड़ी तान सुरीली, मन के सूनेपन में मेरे.
चित्र खींचता ये मन ऐसे,
थिरक रही हो राधा जैसे.
पागल मन नटखट बालक सा,
आख़िर इसे मनाऊं कैसे.
किस मोहन ने रास रचाया ? सूने मन-मधुवन में मेरे.
किसने छेड़ी तान सुरीली, मन के सूनेपन में मेरे.
कौन बाल में फूल लगाये,
कजरारे नैना, अलसाये.
लगता कोई पास खड़ा है,
लेकिन मेरे हाथ न आये.
ये किस का प्रति-बिंब बना है ? धुंधले मन-दर्पण में मेरे,
किसने छेड़ी तान सुरीली, मन के सूनेपन में मेरे.
क्या कहने मन की उमंग के,
फूल खिले हैं रंग-रंग के.
जी भरकर रस पीती आंखें,
करतीं चुंबन अंग-अंग के.
किसने आज प्राण फूंके हैं ? बुझे हुए इस मन में मेरे,
किसने छेड़ी तान सुरीली, मन के सूनेपन में मेरे.

म. प्र. रा. वि. मंडल,
कुरवाई, विदिशा (म. प्र.) ४६४ २२४.

चोंच भर कविताएं

✍ हृदयेश भारद्वाज

(१)
यह जानते बूझते भी
कि मजबूत होते ही पंख,
बच्चे उड़ जायेंगे घोसले से
और बना लेंगे नया नीड़,
चिड़िया दाने डाल रही है-
बच्चों के मुख में.

(२)
खाकर -
छोटे मोटे कीड़े मकौड़े
या गिने चुने दानें,
चिड़िया फुदकती रहती है -
दिन दिन भर.
सुख से सोती है
तिनकों के मकान में,
और सोचती है -
क्यों उदास है आदमी ?

(३)
कई बार भगाया,
मारा-पीटा
और तोड़ा घोसला,
परंतु फिर फिर
बनाती रही घोसला - चिड़िया.
कितनी ढीठ और बेशर्म -
हो जाती है मां
अपने बच्चे के लिए,
भले ही वह अजन्मा क्यों न हो.

(४)
यह सच है कि
चिड़िया के पंखों पर -
टिका है आकाश/ मगर
लोग बहुत हैं -
चिड़िया के पर कतरने वाले.

८६१, द्वारकापुरी, इंदौर-४५२ ००१

दृष्टिपटल

✍ रीता राम

सारे मोहल्ले के कूड़े के ढेर से
बड़े इत्मिनान से ढूंढ़ता था
अपनी ज़रूरत की चीज़ें
कागज़, प्लास्टिक, शीशियों के ढक्कन, बोतलें,
लोहे के टुकड़े, पीतल कांसे का सामान.
एक बड़े से बोरे में भरकर ले जाता था,
उसे अलग-अलग करने, बीनने-छांटने.
कचरे से भी उसे मिल जाते थे
अपने लिए कुछ कमाने लायक चीज़ें.
मुझे लगते ज़िंदगी के सदृश्य ये कचरे के बोरे,
स्मृति पटल पर पड़ा, जहां तहां जो कुछ बिखरा,
बीन कर इकट्ठा करती,
अलग-अलग खानों में भरती
एक जैसी चीज़ जो लगती उपयुक्त
इन खानों से निकली अपनी ही सी,
कुछ बातें जुड़ जातीं मन को भेदने वाली,
अलग सा ध्यान लेने वाली,
ढूंढ़ते सागर तल में जैसे गोताखोर
या कोयले की खदान में अचानक ही पा जाते हीरे कभी,
कुछ पंक्तियां, कुछ शब्द, कुछ दृष्टांत.
जोड़कर बना लेती कविता,
मेरा यह दृष्टिपटल, अब मेरा जीवन-साथी है.
इसी तरह बीननी होंगी अच्छाइयां समाज से,
बनाने नया माहौल,
सांस लेंगी जिसमें
भविष्य के गर्भ में सोयी कुछ आत्माएं
जो अपने आने के इंतजार में
हो रही होंगी कतारबद्ध.

बी. पी. सी. एल. कॉलोनी,
चेंबूर, मुंबई -४०० ०७४

रचनाएं आमंत्रित

'कथाबिंब' के लोकप्रिय स्तंभों, **'आमने-सामने'** और **'सागर-सीपी'** के लिए रचनाएं आमंत्रित हैं. रचनाएं तैयार करने / भेजने से पहले कृपया पूर्व-सूचना दें ताकि आवश्यक सुझाव दिये जा सकें. स्तरीय कहानियां भी आमंत्रित हैं.

-संपादक

दोहे

✍ उदयशंकर सिंह 'उदय'

बहुत ढीठ और शोख़ है, यह दुख का दुहराव ।
अंतहीन दस्तक दिये, हरा समय का घाव ।।
दो दिन की छुट्टी मिली, दो दिन का अवकाश ।
इतने में है नापना, धरती से आकाश ।।
चिट्ठी आयी गांव से, रोम-रोम में हर्ष ।
बार-बार मुझको मिला, मां का वह स्पर्श ।।
पानी-पानी हो गया फिर मेरा वह गांव ।
उफनायी नदियां बहुत, करने लगी कटाव ।।
जल समाधि लेने लगे, अपने प्यारे खेत ।
भटक गयीं नदियां यहां, और किनारे रेत ।।
पीते-पीते युग गया, हुए नहीं हम तृप्त ।
जब-जब देखे गगन को और हुए संक्षिप्त ।।
अपना सूखा है गला, मगर न इसका भान ।
हर प्यासे को तर करूं, यही सदा अरमान ।।

गीतांबरा सहबाजपुर (निकट दुर्गा स्थान),
पो. भीखनपुर कोठी, मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार)-८४२००४.

ग़ज़ल

✍ डॉ. नसीम अख़्तर

वो जो शोला था बुझ गया आख़िर,
इक दिया देर तक जला आख़िर.
कौन देगा यहां बता आख़िर,
करियए-जौर में सदा आख़िर.
जिसका डर था, वही हुआ आख़िर,
बेख़ता मिल गयी सज़ा आख़िर.
दर्मियां भाइयों के मेल हुआ,
ख़ून में ख़ून मिल गया आख़िर.
वो शहंशाहे अकबरे आज़म,
लेके दामन में क्या गया आख़िर.
अपने किरदार को बुलंद करो,
तुमको बनना है रहनुमा आख़िर.
चांद आंखों से हो गया ओझल,
दिल भी वीरान हो गया आख़िर.
काम कोई न आयेगा 'अख़्तर'
आयेगा काम ही ख़ुदा आख़िर.

जे. २६/२०५ मतलउल-उलूम,
कमनगढ़ा, वाराणसी-२२१००१

लघुकथाएं

इंसाफ

✍ विजय

गांव में पानी की कमी नहीं थी. लोग ख़ुशहाल थे. बड़े टोले में ब्राह्मण, बनिये और ठाकुर रहते थे. छोटे टोले में दूसरी जातियों के लोग रहते थे. गांव का मुखिया सूरज प्रताप सिंह न्याय प्रिय व्यक्ति था. पंचायत दूध का दूध और पानी का पानी कर देती थी. सूरज प्रताप सिंह का लड़का चंद्र प्रताप सिंह उनकी कमजोरी था. इकलौते बेटे से बेहद प्यार करते थे.

एक दिन चंद्र प्रताप सिंह छोटे टोले में वारदात कर आया. रोती कलपती नारायणी ने घर जाकर मां से शिकायत की. मां ने बेटे मल्लू को बताया और लाठी उठाते मल्लू ने सल्लू, अपने पिता को. मल्लू लाठी से सज़ा देना चाहता था और सल्लू चाहता था कि दंड पंचायत दे.

सल्लू की शिकायत पर पंचायत बैठी. सरपंच के पूछने पर चंद्र प्रताप सिंह ने अपना अपराध कुबूल कर लिया. पिता होते हुए भी सरपंच ने सजा सुना दी, गांव के लोगों के सामने पचास कोड़े ! लोग वाह वाह करने लगे.

तभी नारायणी सामने आ खड़ी हुई, 'मेरा क्या होगा ?' सल्लू रो पड़ा, 'कौन ब्याहेगा अपना बेटा मेरी बेटी से ?'

सरपंच ने कहा, 'बहुत से लोग ग़रीब हैं तुम्हारी जात में. मैं विवाह करने वाले को बड़ी रक़म दूंगा. दौड़ दौड़ कर ब्याह करने वाले आयेंगे.'

'नहीं ! मेरा विवाह अपने बेटे से कर दो. उसी ने मेरे साथ कुकर्म किया है. उसी को निभाना होगी मेरे साथ ज़िंदगी.'

सरपंच और पंच अवाक से देखते रहे मगर बड़े टोले वालों ने लाठियां उठा लीं, छोटी जात की लड़की से विवाह ! असंभव ?

छोटे टोले वालों ने भी लाठियां उठालीं, जो आदमी औरत के साथ विवाह के बाद करता है वह काम क्यों किया चंद्र प्रताप सिंह ने ?

इस ग़लती का मुआवज़ा दे रहे हैं सरपंच !

बड़े टोले और छोटे टोले में बहस चलती रही. नारायणी समझ गयी कि चाहे लाठियां चल जायें, लोग कट मरें मगर जाति को लेकर कभी भी इंसाफ सच्चाई के करीब नहीं पहुंच सकता है. वह वहां से हट गयी.

बहस के बीच पास ही के कुंए से छपाक का शोर उठा. काफी कोशिश के बाद कुंए से जो लाश निकली वह नारायणी की थी.

✉ बी-१०६, ए. टी. एस ग्रीन्स-१,
सेक्टर-५०, नोएडा-२०१ ३०७.

अस्वीकार

✍ कालीचरण प्रेमी

प्लेटफॉर्म नंबर चार पर शहीद एक्सप्रेस के शीघ्र आने की घोषणा हो चुकी थी. यात्रियों की भीड़ में हलचल मच गयी. लोग अपना-अपना सामान उठाकर ट्रेन में चढ़ने की तैयारी करने लगे. इसी बीच एक अपंग भिखारी मेरे सामने घिसटता हुआ आ डटा - बाबू, इस ग़रीब्र पर दया करो . . भगवान आपका...

मैंने उसे ग़ौर से देखा. उसकी एक टांग कटी हुई थी. वह बैसाखी के सहारे मुश्किल से चल रहा था. गंदे बदन पर वैसे ही मैले कुचैले कपड़े, धस्सड़ बाल, चेहरे पर उगा बालों का बेतरतीब जंगल , पीले-पीले दांत और हाथ में एल्यूमिनियम का कटोरा देखकर मेरा मन बड़ा द्रवित हुआ. बेचारा कैसी विकट परिस्थितियों में पेट के जुगाड़ के लिए भटकता फिर रहा है. दो-चार रुपये से इसका क्या भला होगा, एक पचास का नोट ही दे देता हूं. कम से कम एक दिन तो भर पेट खा लेगा. यही सोचकर मैंने एक पचास का करारा नोट अपनी जेब से निकाला और उसकी हथेली पर रख दिया. अब मैं उसके चेहरे की प्रतिक्रिया भांपने लगा.

मेरी आशा के विपरीत भिखारी ने उस करारे नोट को दो-तीन बार उलटा-पलटा और फिर उस नोट को हवा में उछालते हुए बोला - काहे बाबू हमको अंधा समझे हो... यह नकली नोट कहीं और चलाना...

मैं भौंचक होकर कभी उस भिखारी के चेहरे को तो कभी हवा में उड़ते नोट को देखने लगा.

✉ ए-१०६, बाग कॉलोनी,
शास्त्रीनगर, गाजियाबाद-२०१००२

खिड़कियां

✍ सीमा पांडे 'ख़ुशी'

घर में हैं, होती हैं खिड़कियां
खिड़कियों का मोल ही क्या है ?
चाहें तो खोल लें, न चाहें तो
बरसों रहें बंद ! अपनी मर्ज़ी
दरवाज़े खुलते-बंद होते हैं
आने जाने वालों के लिए...
पर खिड़कियां कभी-कभी
खुलती हैं ख़ुशगवार मौसम में
सुकून से बैठकर दुनिया निहारने के लिए...

✉ उपसंपादक, साहित्य वेबदुनिया.कॉम,
५८२ महात्मा गांधी मार्ग, इंदौर-४५२ ००३

लेटर बॉक्स

❀ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च अंक मिला. सभी कहानियां, लघुकथाएं, गीत, कविताएं और ग़ज़लें अच्छी लगीं. और अच्छा लगा आपका साहित्यिक चयन, आपका संपादन जिससे पत्रिका में चार चांद लग गये. तारिक अस्लम 'तस्नीम' की कहानी 'हेलीकॉप्टर' प्रदेशों में राष्ट्रपति शासन और नेताओं को छलकपट से दूर रहने की कहानी है जिससे आमजन के जीवन जीने को प्रभावपूर्ण वेग से प्रस्तुत किया गया है, तो वहीं अपनी भाषा शैली में अतुलनीय प्रभाव छोड़ती पूर्ण शर्मा 'पूरण' की कहानी 'कुछ तो बाकी है' बहुत अच्छी लगी जो सांप्रदायिकता की आड़ में हो रहे दंभ, झूठ की कहानी है. 'एलोरा', उषा जी की अच्छी कहानी है जहां टीनएजर लड़की बलात्कार जैसे महापाप के विरुद्ध अपने पिता से ही विद्रोह करती है. लेखिका की रचना में विदेशी प्रभाव झलकता है. सलाम बिन 'रज़ाक' की 'कोहरा' धर्म के ठेकेदारों की वास्तविकता को उजागर करती कहानी है.

इसी क्रम में 'सूर्यदीन यादव' की डॉ. रामदरश मिश्र जी के साथ बातचीत पढ़ना मेरे लिए सौभाग्य की बात रही. डॉ. मिश्र मेरे आदर्श हैं. मेरे पी-एच. डी. के साक्षात्कार के समय वे ही मेरे साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति थे. उन्हीं की असीम कृपा से मुझे डॉक्टरेट की उपाधि मिली है. मैं दलित वर्ग से हूं और उनका यह कहना, 'जो वर्ण और वर्ग दोनों ही दृष्टियों से हमारे यहां की कुछ जातियां पद दलित, अपमानित, पीड़ित होती हैं उनको ही दलित कहना ठीक होगा', से मैं सहमत हूं. संपूर्ण रूप से, 'कथाबिंब' मेरी चहेती पत्रिका है. मुझे स्वस्थ साहित्यिक परख रखने वाली यह पत्रिका बहुत उपयोगी लगती है. आपके संपादन से उसमें चार चांद लग जाते हैं.

✤ डॉ. पूरन सिंह
२४०, फरीदपुरी, वेस्ट पटेलनगर,
नयी दिल्ली-११०००८

❀ कथाबिंब ठीक समय पर मिलता है - इंतज़ार रहता है - पत्रिका का नाम चाहे 'कथाबिंब' हो किंतु इसमें साहित्य की सभी विधाएं शामिल हैं. आमने-सामने में 'मेरी कहानी, सबकी कहानी'- सलाम बिन 'रज़ाक' की ज़बानी बहुत पसंद आयी. साफ़गोई इतनी है कहीं डींग नहीं मारी, कहीं आत्मप्रशंसा नहीं, कहीं ग़रीबी का राग फैशन के तौर पर नहीं गाया. सब कुछ पारदर्शी है- संपादक और लेखक दोनों को मेरी हार्दिक बधाई. आज का सारा व्यक्तित्व- अभिमन्यु, अर्जुन नहीं रहा शिखंडी हो गया है. आज के पाखंड का पर्दाफ़ाश बड़ी तरकीब से किया है - एक चुभन सी पैदा कर दी है. हो सके तो मेरी बात रज़ाक साहब तक पहुंचा दीजिएगा.

✤ उमा शुक्ल
३/११, यशवंत नगर, गोरेगांव, मुंबई-४०००६२.

(कुछ और प्रतिक्रियाएं ....पृष्ठ ३ के आगे)

❀ 'कथाबिंब' के जन.-मार्च ०५ अंक का आवरण से लेकर भीतरी पृष्ठों तक काफी बदलाव आया है. 'वातायन' के अंतर्गत आपकी अमरीकी यात्रा का वृतांत पढ़कर मन ख़ुश हो गया. वर्णन काफी रोचक लगा. अमरीका के कुछ दर्शनीय स्थलों का ज़िक्र भी होता तो और अच्छा होता. 'कुछ कही, कुछ अनकही' में आपने कमज़ोर प्रधानमंत्री पर तीखा और सार्थक व्यंग्य कसा है.

सिद्धेश की कहानी 'भारत पूअर सोसायटी' में आज के समय की ज़िंदा तस्वीर खींची गयी है. तारिक अस्लम 'तस्नीम' की कहानी 'हेलीकॉप्टर' में गंवई भाषा का अच्छा प्रयोग हुआ है. कहानी आरंभ में पढ़ने में रोचक लगती है. किंतु आरंभ जितना बढ़िया हुआ है, अंत उतना ही भ्रामक. कहानी के अंत में कथाकार अपनी बातों को कहने में लड़खड़ा गया है. कहानीकार को अख़बारी भाषा के प्रयोग से बचना चाहिए. बिहार के जिस राष्ट्रपति शासन की बात कहानी के अंत में कही गयी है वह तो मात्र दिखावा है और केंद्र सरकार की चाल. बिहार में राष्ट्रपति शासन का क्या हश्र हुआ है, यह जग ज़ाहिर है. फिर तो आपातकाल को भी ठीक ठहराया जायेगा - जो जनता का अधिकार ही छीन लेता है. राष्ट्रपति शासन में लूट, अपहरण, फिरौती की घटनाएं बढ़ गयी हैं और शहाबुद्दीन जैसे अपराधी छवि के दबंग नेता 'वारंटी' होने के बावजूद खुले आम घूम रहे हैं. छोटे-छोटे अपराधी जेल की सलाख़ों के पीछे हैं. क्या सचमुच जनता ख़ुश है, राष्ट्रपति शासन में ? यह बात लेखक दोबारा सोचे.

✤ सिद्धेश्वर
अवसर प्रकाशन, पोस्ट बॉक्स नं. २०५,
करबिगहिया, पटना-८०० ००१.

❀ समकालीन रचनाधर्मिता का सम्यक् निर्वाह करने वाली त्रैमासिक पत्रिका 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च '०५ अंक पढ़कर अच्छा लगा. इस बार प्रस्तुत कहानियों में अधिकांशतः देश के वर्तमान परिवर्तित परिदृश्य को व्यंजित करने वाली थीं. प्रायः हर कहीं संवेदनात्मक धरातल पर जीवन की संघर्ष चेतना आकारित की गयी है. इनमें तारिक अस्लम 'तस्नीम', पूर्ण शर्मा 'पूरण' तथा उषा राजे सक्सेना की रचनाएं ज़्यादा अच्छी लगीं. काव्य रचनाओं में मधु प्रसाद, अनिरुद्ध सिन्हा, छंद राज आदि की प्रस्तुतियां महत्वपूर्ण प्रतीत हुईं. सर्जन-प्रक्रिया को उकेरते 'कथाबिंब' के स्थायी स्तंभ तथा कृति का सम्यक परिचय देती हुई समीक्षाएं मूल्यवान और उपयोगी भी कही जा सकती हैं. कुल मिला कर यह एक संपन्न अंक है.

✤ डॉ. भगीरथ बड़ोले
२८६, विवेकानंद कॉलोनी, फ्रीगंज, उज्जैन-४५६०१०

'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च '०५ अंक प्राप्त हुआ. 'कुछ अनकही, कुछ अनकही' में आपकी टिप्पणियां रचनाकारों तथा पाठकों के मध्य जो सेतु स्थापित करती हैं, वह पूर्णतः अभिनव प्रयोग है. इससे पाठकीय जिज्ञासा बलवती हो जाती है और कथा का आस्वाद भी बढ़ जाता है. इस 'आत्मीय' संवाद के लिए आप साधुवाद के पात्र हैं. कहानियों के अतिरिक्त, लघुकथाएं तथा कविताएं, ग़ज़लें बहुविधा रचना की भूख शांत करती हैं. स्तंभ, 'सागर-सीपी' तथा 'वातायन' प्रेरणादायक भी हैं और जीवंत भी. समकालीन रचनाधर्मिता और ताज़गी से लबरेज़ हुनरमंदी - दोनों का संगम कराता है 'कथाबिंब'. आपको तथा टीम के सभी सदस्यों को बधाई.

भोलापंडित 'प्रणयी' की पहली ग़ज़ल में यदि मतला होता तो और अच्छा होता. ख़ैर... अनिरुद्ध सिन्हा का यह शेर मेरे दिलो दिमाग़ पर अब भी छाया हुआ है.

'वक़्त के रास्ते से गुज़रेगी,
धूप का कोई घर नहीं होता.'

'कथाबिंब' से यूं ही हौसला मिलता रहेगा, इसी उम्मीद के साथ...

राजेंद्र वर्मा

३/२९, विकास नगर, लखनऊ-२२६ ०२०.

अंक क़रीब-क़रीब पढ़ गया हूं. गागर में सागर समाना यह आप ही के बस की बात है. सारी सामग्री प्रभावित करती है. 'सागर/सीपी', 'वातायन' और 'आमने-सामने' अच्छे कॉलम हैं. 'वातायन' के माध्यम से आपने साहित्यिक टच देकर जो विदेश यात्रा का वर्णन किया है, वह आकर्षित ही नहीं करता बल्कि ज्ञानवर्द्धक भी है. कहानियां सारी अच्छी लगीं. उषा राजे सक्सेना और सलाम बिन 'रज़ाक' की कहानियों ने विशेष रुप से प्रभावित किया. तेजेंद्र शर्मा की कविता, विकास और अनिरुद्ध सिन्हा की ग़ज़लों ने भी विशेष रुप से आकर्षित किया. कुल मिलाकर सारी सामग्री बेहतर और स्तरीय ही नहीं बल्कि अपने-अपने क्षेत्र में प्रभावोत्पादक भी है. मेरे वरिष्ठ साथी भोला पंडित 'प्रणयी' को विशेष रुप से बधाई. उनकी ग़ज़लें और कविता 'कथाबिंब' में पढ़ने को मिलीं. अच्छी लगीं.

रहबान अली राकेश

वार्ड न. २०, मिडलैंड के पास, अररिया (बिहार) - ८५४३११.

जनवरी-मार्च '०५ का 'कथाबिंब' का अंक प्राप्त हुआ. पता नहीं क्यों, इस पत्रिका का इंतज़ार बना रहता है और जब मिलती है तो पूरा पढ़े बग़ैर चैन ही नहीं मिलता. उषा राजे सक्सेना की कहानी 'एलोरा', सलाम बिन रज़ाक की कहानी 'कोहरा' ने प्रभावित किया. 'और नदी बहती रही' पढ़कर मन विदेश यात्रा पर निकल गया. काश, हमें भी यह सौभाग्य प्राप्त होता. साधुवाद.

गोवर्धन यादव

१०३, कावेरीनगर, छिंदवाड़ा (म. प्र.) - ४८०००१.

'कथाबिंब' के जनवरी-मार्च '०५ अंक में उषा राजे सक्सेना की कहानी 'एलोरा' और सलाम बिन 'रज़ाक' की कहानी 'कोहरा' विशेष तौर से पसंद आयीं. ये दोनों कहानियां स्त्री चेतना की कहानियां कही जायेंगी. सलाम बिन 'रज़ाक' की कहानी भारतीय पृष्ठभूमि में मुस्लिम नायिका के संघर्ष और संकल्प की कथा कहती है तो उषा राजे की कहानी विदेशी पृष्ठभूमि में हिंदु परिवार की लड़की की तेजस्विता और जुझारु तेवर की दास्तान कहती है. दोनों कहानियों में अद्भुत साम्य है कि उनके प्रतिनायक उन लड़कियों के पिता ही हैं. दोनों कहानियों में पिता का खोखलापन, भीरुता और दोहरा चरित्र उजागर होता है. प्रगतिशीलता का मोर्चा बेटियां संभालती हैं. पीढ़ियों के वैचारिक और जीवन-संघर्ष को सहज प्रखरता और प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त करती इन दोनों कहानियों में किस कहानी को ज़्यादा अच्छी कहा जाये, निर्णय करना आसान नहीं है.

सलाम बिन 'रज़ाक' का आत्मकथ्य उनके रचना संघर्ष और कलम की मज़बूती का अहसास कराता है. तेजेंद्र शर्मा की कविताएं मार्मिक और साहसिक हैं.

केशव शरण

एस २/५६४ सिकरौल, वाराणसी-२२१००२

उत्कृष्ट सामग्री सहित जनवरी-मार्च '०५ की 'कथाबिंब' मिली. देश-विदेश की स्तरीय रचनाओं के प्रकाशन हेतु आपको बधाई. श्री तेजेंद्र शर्मा जी की 'टेम्स का पानी' कविता मन को छू गयी. जो बात कवि ने लिखी है कि टेम्स में मात्र 'पानी' है जबकि हमारी नदियों में हम जल देखते हैं और महिम भाव से उसे माथे पर लगाते हैं. तभी न हमारी संस्कृति हमारे रक्त में है. इसे रक्त से पृथक नहीं किया जा सकता चाहे युग बीत जायें, दूरियां सिमट जायें पर हमारी संस्कृति की अमरता अक्षुण्ण है. आपने इस कविता को 'कथाबिंब' में स्थान देकर हमारी लंदन की यादें ताज़ा करवा दीं. अतः पुनः बधाई व कथाबिंब की विकास-यात्रा हेतु शुभकामनाएं.

सुधारानी श्रीवास्तव

२०८/२, गुप्ता कॉलोनी, गढ़ा फाटक,
जबलपुर (म. प्र.) - ४८२००२.

'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च '०५ अंक मिला. धन्यवाद. आपकी विचारधारा मेरे 'विचार प्रवाह' से मेल खाती है, अतः आपका संपादकीय तो मुझे रुचेगा ही. 'एलोरा' कहानी अपूर्ण है अतः प्रभावहीन है. सर्वश्रेष्ठ कहानी है रज़ाक जी की 'कोहरा'. रज़ाक साहब की लेखनी मंजी हुई है, भाषा साफ़ और विचार भ्रम-रहित.

अंक देर से आया, मगर क्या शानदार आया !

अभिनव ओझा

२१०/७१-बी/१, स्टेनली रोड, कमलानगर,
इलाहाबाद-२११००२

हमकदम लघु-पत्रिकाएं

(प्रस्तुत सूची में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो या किसी पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया हो तो कृपया सूचित करें.)

कथादेश (मा.) - हरिनारायण, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., १००९ इंद्रप्रकाश बिल्डिंग, २१ बाराखंभा रोड, नयी दिल्ली - ११०००१
दाल-रोटी (मा.) - अक्षय जैन, १३ रश्मन अपार्टमेंट, एस. एल. रोड, मुलुंड (प.), मुंबई - ४०० ०८०
मधुमति (मा.) - वेदव्यास, राजस्थान साहित्य अकादमी, हिरन मगरी, सेक्टर-४, उदयपुर ३१३ ००२
वागर्थ (मा.) - विजय दास, भारतीय भाषा परिषद, ३६-ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता - ७०० ०१७
समाज प्रवाह (मा.) - मधुश्री काबरा, गणेश बाग, जवाहर लाल नेहरू रोड, मुलुंड (प.), मुंबई ४०० ०८०
साहित्य अमृत (मा.) - विद्यानिवास मिश्र, ४/१९ आसफ अली मार्ग, नयी दिल्ली - ११० ००२
साहित्य क्रांति (मा.) - अनिरुद्ध सिंह सेंगर 'आकाश,' भार्गव कॉलोनी, गुना ४७३ ००१ (म. प्र.)
शुभ तारिका (मा.) - उर्मि कृष्ण, ए-४७ शास्त्री कॉलोनी, अंबाला छावनी - १३३ ००१
शिवम् (मा.) - विनोद तिवारी, जय राजेश, ए-४६२, सेक्टर-ए, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०३९
अरावली उद्घोष (त्रै.) - बी. पी. वर्मा 'पथिक', ४४८ टीचर्स कॉलोनी, अंबामाता स्कीम, उदयपुर ३१३ ००४
अपूर्व जनगाथा (त्रै.) - डॉ. किरन चंद्र शर्मा, डी-७६६, जनकल्याण मार्ग, भजनपुरा, दिल्ली - ११० ०५३
अभिनव प्रसंगवश (त्रै.) - डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ, डी-१३१ रमेश विहार, निकट ज्ञान सरोवर, अलीगढ़ (उ. प्र.)
असुविधा (त्रै.) - रामनाथ शिवेंद्र, ग्राम-खड्डई, पो. पन्नूगंज, सोनभद्र - २३१ २१३ (उ. प्र.)
अक्षरा (त्रै.) - विजय कुमार देव, म. प्र. रा. समिति, हिंदी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - ४६२ ००२
आकंठ (त्रै.) - हरिशंकर अग्रवाल / अरुण तिवारी, महाराणा प्रताप वार्ड, पिपरिया - ४६१ ७७५ (म. प्र.)
औरत (त्रै.) - मेनका मल्लिक, चतुरंग प्रकाशन, मेनकायन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५१ १३४
अंचल भारती (त्रै.) - डॉ. जयनाथ मणि त्रिपाठी, अंचल भारती प्रिंटिंग प्रेस, रा. औ. आस्थान, गोरखपुर मार्ग, देवरिया - २७४ ००१
अंतरंग (त्रै.) - प्रदीप बिहारी, चतुरंग प्रकाशन, मेनकायन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५१ १३४
अंतरंग संगिनी (त्रै.) - दिव्या जैन, गोविंद निवास, सरोजिनी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६
कंचन लता (त्रै.) - भरत मिश्र 'प्राची', डी-८, सेक्टर-३ए, खेतड़ी नगर - ३३३ ५०४
कृति ओर (त्रै.) - विजेंद्र, सी-१३३, वैशाली नगर, जयपुर - ३०२ ०२१
कथन (त्रै.) - रमेश उपाध्याय, १०७, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-३, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली - ११० ०६३
कथा समवेत (त्रै.) - शोभनाथ शुक्ल, कल्लूमल मंदिर, सब्जी मंडी, चौक, सुल्तानपुर - २२८ ००१
कल के लिए (त्रै.) - डॉ. जयनारायण, 'अनुभूति', विकास भवन, बहराइच - २७१ ८०१ (उ. प्र.)
कहानीकार (त्रै.) - कमल गुप्त, के ३०/३६ अरविंद कुटीर, वाराणसी २२१ ००१
कौशिकी (त्रै.) - कैलाश झा किंकर, क्रांति भवन, चित्रगुप्त नगर, खगड़िया - ८५१ २०४
गुंजन (त्रै.) - मोहन सिंह रावत, रोहिला लॉज परिसर, तल्लीताल, नैनीताल - २६३ ००२
तटस्थ (त्रै.) - डॉ. कृष्ण बिहारी सहल, विवेकानंद विला, पुलिस लाइन्स के पीछे सीकर - ३३२ ००१
तेवर (त्रै.) - कमलनयन पांडेय, १५८७/४, उदय प्रताप कॉलोनी, बढ़ैयावीर, सिविल लाइन्स, सुलतानपुर - २२८ ००१
दस्तक (त्रै.) - राघव आलोक, "साराजहां", मकदमपुर, जमशेदपुर - ८३१ ००२
दीर्घाबोध (त्रै.) - कमल सदाना, अस्पताल चौक, ईसागढ़ रोड, अशोक नगर ४७३ ३३१ (म. प्र.)
द्वीप लहरी (त्रै.) - डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी, हिंदी साहित्य कला परिषद, पोर्ट ब्लेयर, ७४४ १०१
डांडी-कांटी (त्रै.) - मधुसिंह बिष्ट, भगवान नगर, नलपाड़ा, सैंडोज बाग, कापुर बावड़ी, ठाणे ४०० ६०७
नारी अस्मिता (त्रै.) - डॉ. रचना निगम, १५ गोयागेट सोसायटी, शक्ति एपार्टमेंट, बी-ब्लॉक, एस/३, वडोदरा - ३९० ००४
निमित्त (त्रै.) - श्याम सुंदर निगम, १४१५, 'पूर्णिमा', रतनलाल नगर, कानपुर २०८ ०२२
परिधि के बाहर (त्रै.) - नरेंद्र प्रसाद 'नवीन,' पीयूष प्रकाशन, महेंद्रू, पटना - ८०० ००६
पश्यंती (त्रै.) - प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय, बी-१/१०४ जनकपुरी, नयी दिल्ली - ११० ०५८
प्रगतिशील आकल्प (त्रै.) - डॉ. शोभनाथ यादव, पंकज क्लासेज, पोस्ट ऑफिस बिल्डिंग, जोगेश्वरी (पू.), मुंबई ४०० ०६०
प्रयास (त्रै.) - शंकर प्रसाद करगेती, 'संवेदना', एफ-२३, नयी कॉलोनी, कासिमपुर, अलीगढ़ - २०२ १२७
प्रेरणा (त्रै.) - अरुण तिवारी, सी-१६०, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०१६
पुरुष (त्रै.) - विजयकांत, निराला नगर, गोशाला रोड, मुजफ्फरपुर ८४२ ००२ (बिहार)
पुरवाई (त्रै.) - पद्मेश गुप्त, (भारतीय संपर्क : ऋचा प्रकाशन, डी-३६ साउथ एक्सटेंशन, पार्ट-१, नयी दिल्ली ११० ०४९
बूंद-बूंद सागर (त्रै.) - डॉ. सुरेंद्र प्रसाद 'केसरी', पोस्ट बॉक्स नं. २, रक्सौल ८४५ ३०५
प्रोत्साहन (त्रै.) - जीवतराम सेतपाल, 'सिंधु' बेसमेंट, २०५/३१, मेन रोड, शीव (पू.) मुंबई - ४०० ०२२
भाषा सेतु (त्रै.) - डॉ. अंबाशंकर नागर, हिंदी साहित्य परिषद, २ अमर आलोक अपार्टमेंट, बालवाटिका, मणिनगर, अहमदाबाद - ३८० ००८
मसि कागद (त्रै.) - डॉ. श्याम सखा 'श्याम,' १२ विकास नगर, रोहतक १२४ ००१
मुहिम (त्रै.) - बच्चा यादव / रणविजय सिंह सत्यकेतु, रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया - ८५४ ३०१

युग साहित्य मानस (त्रै.) - सी. जय शंकर बाबू, १८/७९५/एफ/८-ए. तिलक नगर, गुंतकल - ५१५ ८०१ (आं. प्र.)
युगीन काव्या (त्रै.) - हस्तीमल 'हस्ती,' २८ कालिका निवास, नेहरू रोड, सांताक्रुज, मुंबई - ४०० ०५५
वर्तमान जनगाथा (त्रै.) - बलराम अग्रवाल, डी-२२ शांतिपथ, पत्रकार कॉलोनी, तिलक नगर, जयपुर - ३०२ ००४
वर्तमान संदर्भ (त्रै.) - संगीता आनंद, देवकीधाम, ए-३ वेस्ट बोरिंग कैनाल रोड, पटना - ८०० ००१
विषय वस्तु (त्रै.) - धर्मेंद्र गुप्त, २७४ राजधानी एन्क्लेव, रोड नं. ४४, शकूर बस्ती, दिल्ली - ११० ०३४
वैखरी (त्रै.) - डॉ. अमरेंद्र, लाल खां दरगाह लेन, विश्वविद्यालय पथ, भागलपुर - ८१० ००२
संबोधन (त्रै.) - कमर मेवाड़ी, चांदपोल, कांकरोली - ३१३ ३२४
समकालीन सृजन (त्रै.) - शंभुनाथ, २० बालमुकुंद मक्कर रोड, कलकत्ता - ७०० ००७
साखी (त्रै.) - केदारनाथ सिंह, प्रेमचंद साहित्य संस्थान, प्रेमचंद पार्क, बेतिया हाता, गोरखपुर - २७३ ००१
सदभावना दर्पण (त्रै.) - गिरीश पंकज, जी-५० नया पंचशील नगर, रायपुर - ४९२ ००१
सार्थक (त्रै.) - मधुकर गौड़, १/ए/३०३ ब्ल्यू ओसन, ब्ल्यू एंपायर कॉम्पलेक्स, महावीर नगर, कांदिवली (प.), मुंबई - ४०० ०६७
संयोग साहित्य (त्रै.) - मुरलीधर पांडेय, २०४/'ए' चिंतामणि अपार्टमेंट, आर.एन.पी. पार्क, काशी विश्वनाथ नगर, भयंदर, मुंबई - ४०११०५
सही समझ (त्रै.) - डॉ. सोहन शर्मा, ई-५०३, गोकुल रेजीडेंसी दत्तानी पार्क, वेस्टर्न एक्सप्रेस हाइवे, कांदिवली (पू.), मुंबई - ४०० १०१
स्वातिपथ (त्रै.) - कृष्ण 'मनु', साहित्यांजन, बी-३/३५, बालुडीह, मुनीडीह, धनबाद - ८२८ १२९
शब्द संसार (त्रै.) - संजय सिन्हा, पो. बॉक्स नं. १६४, आसनसोल ७१३३०१
शुरुआत (त्रै.) - वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव, ३० आकाश गंगा परिसर, पुरानी बस्ती, मनेंद्रगढ़
शेष (त्रै.) - हसन जमाल, पन्ना निवास के पास, लोहार पुरा, जोधपुर -३४२ ००२
हिंदुस्तानी ज़बान (त्रै.) - डॉ. सुशीला गुप्ता, महात्मा गांधी बिल्डिंग, ७ नेताजी सुभाष रोड, मुंबई - ४०० ००२
अविरल मंथन (अ.) - राजेंद्र वर्मा, ३/२९ विकास नगर, लखनऊ - २२६ ०२०
कला (अ.) - कलाधर, नया टोला, लाइन बाजार, पूर्णियां - ८५४ ३०१
मित्र (अ.) - मिथिलेश्वर, महाराजा हाता, कतिरा, आरा - ८०२ ३०१
पुनः (अ.) - कृष्णानंद कृष्ण, दक्षिणी अशोक नगर, पथ सं-८बी, कंकड़ बाग, पटना - ८०० ०२०
सरोकार (अ.) - सदानंद सुमन, रानीगंज, मेरीगंज, अररिया - ८५४ ३३४
समीचीन (अ.) - डॉ. देवेश ठाकुर, बी-२३ हिमाचल सोसायटी, असल्फा, घाटकोपर (पू.), मुंबई ४०० ०८४
समीहा (अ.) - शेखर सावंत, 'देवायतन', प्रो. कॉलोनी, बेगूसराय - ८५१ १०१
सम्यक (अ.) - मदन मोहन उपेंद्र, ए-१० शांतिनगर (संजय नगर), मथुरा २८१ ००१

कुछ कही, कुछ अनकही

(. . . पृष्ठ ४ से आगे)

इस अंक के छपते-छपते बिहार में फरवरी में हुए चुनावों के बाद राज्यपाल बूटासिंह द्वारा विधान सभा भंग करने के संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा जनहित याचिका पर फ़ैसला सुनाया गया. फ़ैसले में विधान सभा भंग करने को असंवैधानिक बताया गया. यदि विधान सभा भंग करना असंवैधानिक था तो चुने हुए प्रतिनिधियों को दोबारा मौक़ा मिलना चाहिए. किंतु क्योंकि चुनाव प्रक्रिया पुनः प्रारंभ हो चुकी है इसलिए उसे रोका नहीं जा सकता. यह एक अनोखा विरोधाभास है - एक अच्छा मज़ाक. एक असंवैधानिक निर्णय के तहत बिहार के नागरिकों पर दोबारा चुनाव थोपा गया. इसके लिए कौन ज़िम्मेदार है - राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, गृहमंत्री या राज्यपाल बूटासिंह ? जितनी बार बिहार में चुनाव होते हैं कई लोगों की जानें जाती हैं. क्या यह ख़ून ख़राबा टाला नहीं जा सकता था ?

इसी तरह का एक निर्णय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के बारे में लिया गया. बिना किसी मांग आये या विश्वविद्यालय के महत्वपूर्ण अधिकारियों से सलाह-मशवरा किये मानव संसाधन मंत्री अर्जुन सिंह ने अ. मु. विश्वविद्यालय को अल्पसंख्यीय संस्थान घोषित कर दिया और उत्तर-स्नातक कोर्सों में मुसलमानों के लिए ५० प्रतिशत आरक्षण लागू कर दिया. यह कोई छुपा हुआ 'एजेन्डा' नहीं है. सीधे-सीधे, खुलेआम मुसलमानों का तुष्टीकरण है. पर उच्च न्यायालय ने इसे भी निरस्त कर दिया है. यहां भी वही समस्या है कि आरक्षण के अंतर्गत जिन विद्यार्थियों ने प्रवेश ले लिया है उनकी अब क्या स्थिति होगी ?

●

इधर एक नया ट्रेंड देखने में आ रहा है. राजनीतिक दलों के हर छोटे-बड़े नेताओं के जन्म दिन बहुत धूम-धाम से मनाये जाने लगे हैं. प्रत्येक चौराहे या मोड़ पर उनके बड़े-बड़े रंगीन पोस्टर लगाये जाते हैं. यह जनता के पैसों का खुलेआम दुरुपयोग है. इस पर तुरंत पाबंदी लगनी चाहिए. किंतु शायद किसी जनहित याचिका दायर करने के बाद ही इस पर रोक लग पाये !

अरविंद

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य

आजीवन सदस्यों के हम विशेष आभारी हैं. जिनके सहयोग ने हमें ठोस आधार दिया है. सभी आजीवन सदस्यों से निवेदन है कि वे एक या दो या अधिक लोगों को आजीवन सदस्यता स्वीकारने के लिए प्रेरित करें. संभव हो तो अपने संपर्क के माध्यम से विज्ञापन भी उपलब्ध करायें. यदि विज्ञापन दिलवा पाना संभव हो तो कृपया हमें लिखें.

१) श्री अरुण सक्सेना, नवी मुंबई
२) डॉ. आनंद अस्थाना, हरदोई
३) स्वामी विवेकानंद हाई स्कूल, कुर्ला, मुंबई
४) डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव, मुंबई
५) डॉ. ए. वेणुगोपाल, मुंबई
६) डॉ. नागेश करंजीकर, मुंबई
७) डॉ. प्रेम प्रकाश खन्ना, मुंबई
८) श्री हरभजन सिंह दुआ, नवी मुंबई
९) डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी, मुंबई
१०) श्री उमेशचंद्र भारतीय, मुंबई
११) श्री अमर ठकुर, मुंबई
१२) श्री बी. एम. यादव, मुंबई
१३) डॉ. राजनारायण पांडेय, मुंबई
१४) सुश्री शशि मिश्रा, मुंबई
१५) श्री भगीरथ शुक्ल, बोईसर
१६) श्री कन्हैया लाल सराफ, मुंबई
१७) श्री अशोक आंद्रे, पंचमढ़ी
१८) श्री कमलेश भट्ट 'कमल', मथुरा
१९) श्री राजनारायण बोहरे, दतिया
२०) श्री कुशेश्वर, कोलकाता
२१) सुश्री कनकलता, धनबाद
२२) श्री भूपेंद्र शेठ 'नीलम', जामनगर
२३) श्री संतोष कुमार शुक्ल, शाहजहांपुर
२४) प्रो. शाहिद अब्बास अब्बासी, पांडिचेरी
२५) सुश्री रिफ़अत शाहीन, गोरखपुर
२६) श्रीमती संध्या मल्होत्रा, अनपरा, सोनभद्र
२७) डॉ. वीरेंद्र कुमार दुबे, चौरई
२८) श्री कुमार नरेंद्र, दिल्ली
२९) श्री मुकेश शर्मा, गुड़गांव
३०) डॉ. देवेंद्र कुमार गौतम, सतना
३१) श्री सत्यप्रकाश, दिल्ली
३२) डॉ. नरेश चंद्र मिश्र, नवी मुंबई
३३) डॉ. लक्ष्मण सिंह विष्ट, 'बटरोही,' नैनीताल
३४) श्री एल. एम. पंत, मुंबई
३५) श्री हरिशंकर उपाध्याय, मुंबई
३६) श्री देवेंद्र शर्मा, मुंबई
३७) श्रीमती राजेंद्र कौर, नवी मुंबई
३८) डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला, नवी मुंबई
३९) श्री नवनीत ठक्कर, अहमदाबाद
४०) श्री दिनेश पाठक 'शशि', मथुरा
४१) श्री प्रकाश श्रीवास्तव, वाराणसी
४२) डॉ. हरिमोहन बुधौलिया, उज्जैन
४३) श्री जसवंत सिंह विरदी, जालंधर
४४) प्रधानाध्यापक, 'ब्लू बेल' स्कूल, फतेहगढ़
४५) डॉ. कमल चोपड़ा, दिल्ली
४६) श्री आर. एन. पांडे, मुंबई
४७) डॉ. सुमित्रा अग्रवाल, मुंबई
४८) श्रीमती विनीता चौहान, बुलंदशहर
४९) श्री सदाशिव 'कौतुक', इंदौर
५०) श्रीमती निर्मला डोसी, मुंबई
५१) श्रीमती नरेंद्र कौर छाबड़ा, औरंगाबाद
५२) श्री दीप प्रकाश, मुंबई
५३) श्रीमती मंजु गोयल, नवी मुंबई
५४) श्रीमती सुधा सक्सेना, नवी मुंबई
५५) श्रीमती अनीता अग्रवाल, धौलपुर
५६) श्रीमती संगीता आनंद, पटना
५७) श्री मनोहर लाल टाली, मुंबई
५८) श्री एन. एम. सिंघानिया, मुंबई
५९) श्री ओ. पी. कानूनगो, मुंबई
६०) डॉ. ज. वी. यख्मी, मुंबई
६१) डॉ. अजय शर्मा, जालंधर
६२) श्री राजेंद्र प्रसाद 'मधुबनी', मधुबनी
६३) श्री ललित मेहता 'जालौरी,' कोयंबटूर
६४) श्री अमर स्नेह, नवी मुंबई
६५) श्रीमती मीना सतीश दुबे, इंदौर
६६) श्रीमती आभा पूर्वे, भागलपुर
६७) श्री ज्ञानोत्तम गोस्वामी, मुंबई
६८) श्रीमती राजेश्वरी विनोद, नवी मुंबई
६९) श्रीमती संतोष गुप्ता, नवी मुंबई
७०) श्री विशंभर दयाल तिवारी, मुंबई
७१) श्री अभिषेक शर्मा, नवी मुंबई
७२) श्री ए. बी. सिंह, निंबोहड़ा, चितौड़गढ़
७३) श्री योगेंद्र सिंह भदौरिया, मुंबई
७४) श्री विपुल सेन 'लखनवी', मुंबई
७५) श्रीमती आशा तिवारी, मुंबई
७६) श्री गुप्त राधे प्रयागी, इलाहाबाद
७७) श्री महावीर रवांल्टा, बुलंदशहर
७८) श्री रमेश चंद्र श्रीवास्तव, फतेहगढ़
७९) डॉ. रमाकांत रस्तोगी, मुंबई
८०) श्री महीपाल भूरिया, मेघनगर, झाबुआ (म. प्र.)
८१) श्रीमती कल्पना बुद्धदेव 'व्रज', राजकोट
८२) श्रीमती लता जैन, नवी मुंबई
८३) श्रीमती श्रुति जायसवाल, मुंबई
८४) श्री लक्ष्मी सरन सक्सेना, कानपुर
८५) श्री राजपाल यादव, कोलकाता
८६) श्रीमती सुमन श्रीवास्तव, नयी दिल्ली

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य

८७) श्री ए. असफल, भिंड (म. प्र.)
८८) डॉ. उर्मिला शिरीष, भोपाल
८९) डॉ. साधना शुक्ला, फतेहगढ़
९०) डॉ. त्रिभुवन नाथ राय, मुंबई
९१) श्री राकेश कुमार सिंह, आरा (बिहार)
९२) डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी, भुज-कच्छ
९३) डॉ. उमाकांत बाजपेयी, मुंबई
९४) श्री नेपाल सिंह चौहान, नाहरपुर (हरि.)
९५) श्री रूप नारायण तिवारी 'वीरान', बिलासपुर
९६) श्री जे. पी. टंडन 'अलौकिक', फ़र्रुख़ाबाद
९७) श्री शिव ओम 'अंबर,' फ़र्रुख़ाबाद
९८) श्री आर. पी. हंस, मुंबई
९९) सुश्री अल्का अग्रवाल सिगतिया, मुंबई
१००) श्री मुन्नू लाल, बलरामपुर (उ. प्र.)
१०१) श्री देवेंद्र कुमार पाठक, कटनी
१०२) सुश्री कविता गुप्ता, मुंबई
१०३) श्री शशिभूषण बडोनी, मसूरी
१०४) डॉ. वासुदेव, रांची
१०५) डॉ. दिवाकर प्रसाद, नवी मुंबई
१०६) सुश्री आभा दवे, मुंबई
१०७) सुश्री रश्मि सक्सेना, मुंबई
१०८) श्री मुनी राज सिंह, मुंबई
१०९) श्री प्रताप सिंह सोढ़ी, इंदौर
११०) श्री सुधीर कुशवाह, ग्वालियर
१११) श्री राजेंद्र कुमार सक्सेना, दिल्ली
११२) श्री एन. के. शर्मा, नवी मुंबई
११३) श्रीमती मीरा अग्रवाल, दिल्ली
११४) श्री कुलवंत सिंह, मुंबई
११५) डॉ. राजेश गुप्ता, भुसावल
११६) श्री साहिल, वेरावल (गुज.)
११७) डॉ. माधुरी छेड़ा, मुंबई
११८) सुश्री मंगला रामचंद्रन, इंदौर
११९) श्री पवन शर्मा, जुन्नारदेव, छिंदवाड़ा (म. प्र.)
१२०) डॉ. भाग्यश्री गिरी, पुणे

: प्राप्ति-स्वीकार :

अनबीता व्यतीत (उपन्यास) : **कमलेश्वर**, लोकभारती प्रकाशन, १५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-२११००१. मू. १२५/-
दूसरा सफ़र (कहानी संग्रह) : **सूर्यदीन यादव**, मित्तल एंड सन्स, ८० विजय ब्लॉक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली - ११००९२ मू. १५०/-
आखिरी कड़कनाथ (क. सं.) : **युगेश शर्मा**, जनहित प्रकाशन, सी-५ नेहरु नगर, भोपाल-४६२००३. मू. १२५/-
गवाक्ष (क. सं.) : **राकेश भारतीय**, क्षितिज, बी-८, नवीन शहादरा, दिल्ली-११००३२. मू. १५०/-
ख़ुश मिजाज लड़की (क. सं.) : **अक्षय गोजा**, मीनाक्षी प्रकाशन, एम. बी. ३२/२ बी, गली २, शकरपुर, दिल्ली-११००९२ मू. ८०/-
महामानव (लघुकथा संग्रह) : **सं. - डॉ. तेजपाल सोढ़ी 'देव'**, वैभव प्रकाशन, ७०, श्रीराम नगर, कनाडिया रोड, बंगाली कॉलोनी, चौराहा, इंदौर - ४५७०१६ मू. ८०/-
आये न बालम (व्यंग्य संग्रह) : **डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव**, शैवाल प्रकाशन, चंद्रावती कुटीर, दाऊदपुर, गोरखपुर-२७३००१. मू. १२५/-
डॉ. कृष्णबिहारी 'सहल', व्यक्ति और सृष्टा (व्यक्तित्व) : **सं. गोरधन सिंह शेखावत**, शेखावाटी साहित्य, कला एवं संस्कृति अकादमी, लक्ष्मण गढ़, सीकर (राजस्थान). मू. २२५/-
आधे अधूरे परिचय (संस्मरण/परिचय) : **बलराम**, भावना प्रकाशन, १०९ए, पटपड़गंज, दिल्ली-११००९१. मू. २५०/-
सबसे अच्छा उपहार (बाल कथाएं) : **राजकुमार जैन 'राजन'**, अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. १५०/-
चिट्ठियां (कविता संग्रह) : **मोहन तिवारी 'आनंद'**, सिद्धार्थ प्रकाशन, भोपाल, मू. ५०/-
नये घर में प्रवेश (क. सं.) : **नरेश अग्रवाल**, प्रकाशन संस्थान, ४७१५/२१, दयानंद मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. १००/-
क्या फ़र्क पड़ता है (क. सं.) : **श्याम सखा 'श्याम'**, प्रयास ट्रस्ट, १२ विकास नगर, रोहतक-१२४००१. मू. ४०/-
सुहानी धूप का सहरा (ग़ज़ल संग्रह) : **सगीर अशरफ़**, मुस्कान प्रकाशन, खटीमा, ऊधमसिंह नगर (उत्तरांचल), मू. १२०/-
साथ चलेगा कौन (दोहा संग्रह) : **हरे राम 'समीप'**, पुस्तक बैंक, ३९५ सेक्टर-८, फरीदाबाद - १२१००६ मू. १००/-

'किरण देवी सराफ ट्रस्ट' (मुंबई) के सौजन्य से प्रकाशित पुस्तकें

भूल जाते हैं हम (ग़ज़ल संग्रह) : **कुमार संजय सिंह**, मू. ५१/-. **खंडहर** (काव्य संग्रह) : **पुरुषोत्तम दुबे 'सेवक'**, मू. १००/-.
मन मंदिर-भाग-२, (भजन संग्रह) : **लोचन सक्सेना**, मू. १००/-. **शबनम और गीत** (गीत संग्रह) : **एच. एस. भाटिया**, मू. १००/-.
यादों के झरोखे से (शायरी) : **सं. चेतन माथुर**, मू. १००/-. **नाटक-नगर** (नाटक संग्रह) : **आफ़ताब हसनैन**, मू. ६०/-.
अल्ला हुम्मा लब्बैक (नाटक) : **आफ़ताब हसनैन**, मू. ३०/-. **प्रेम माधुरी** (प्रेमगीत) : **रामेश्वर कन्हैया लोहिया**, मू. १००/-.

Our Attractive Loan Schemes
Will Fulfil Your Colourful Dreams
JAN-NIWAS
Housing Loan for purchase of a House/ Flat or purchase of a Plot & construction thereon.
ANTARANG
Loans for House repairs and House renovations.
JAN-ADHAR
Loans for purchase of Consumer Durables/Furniture etc. or for Medical /Travel Expenses.
MORTGAGE LOAN
Loans for various purposes against Immovable Properties.
VEHICLE-LOAN
Loans for purchase of new / second hand Car or Two / Three wheeler.
JAN VYAPAR
Loans for Small & Medium Entrepreneurs (SME), Small Scale Industries(SSI), Corporate Loans
UDYOGINI
Loan Scheme for Women Entrepreuners
Attractive Rates of Interest
Flexible Loan Schemes
Convenient EMI options
Hassle Free Documentation
Personalised Banking Service
जनकल्याण
JANAKALYAN
SAHAKARI BANK LTD.
(Scheduled Bank)
The Bank with a Homely Touch
L'amour, Mumbai
Head Office : Vivek Darshan, 140, Sindhi Society, Chembur, Mumbai - 400 071 Tel.: 2522 2582 Fax: 2523 0266
For more information, please get in touch with your nearest Janakalyan Bank branch, today!
Conditions apply
Rendering Personalised Banking Service through a network of 25 Branches spread across Mumbai and its outskirts.

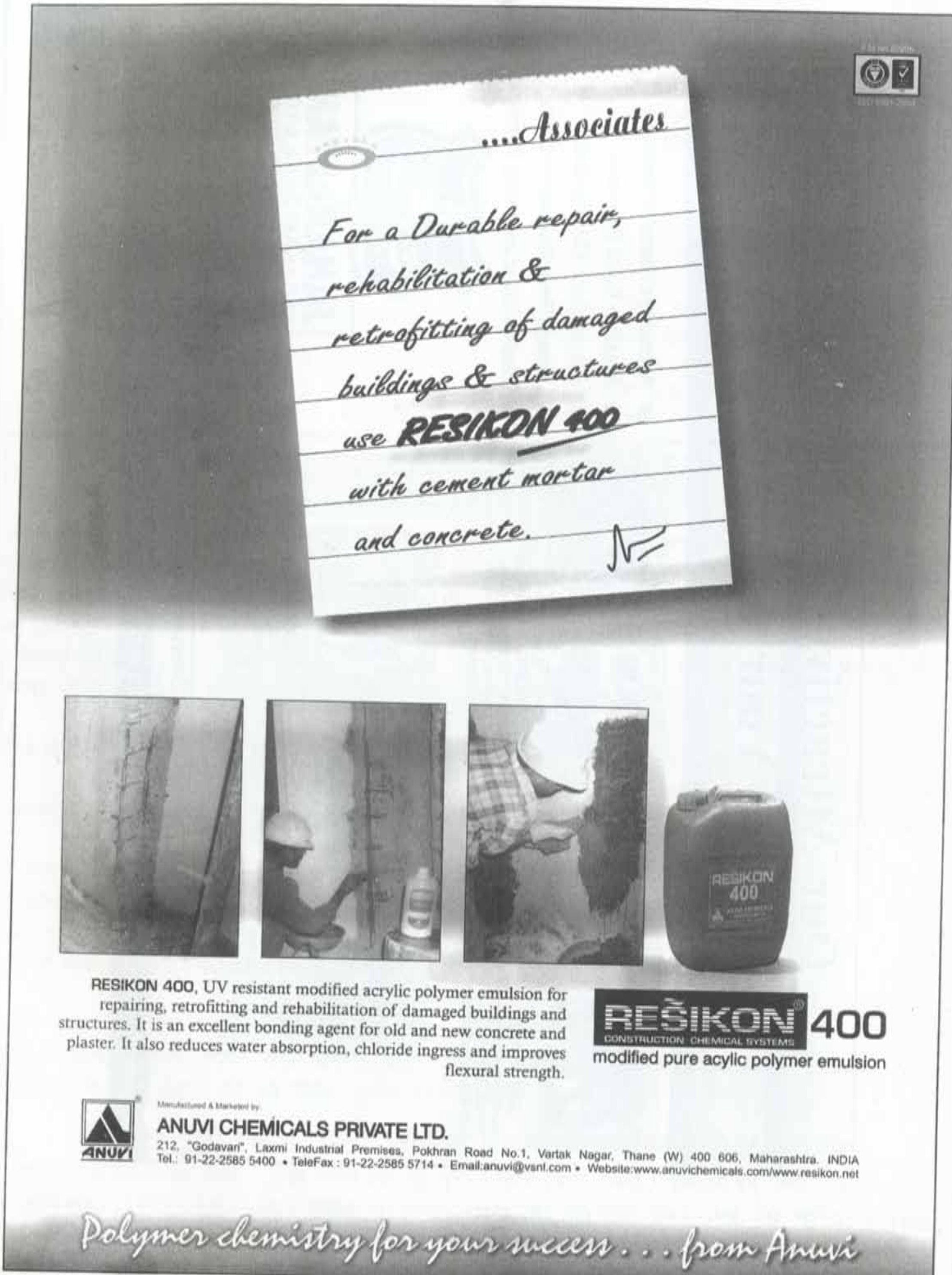
....Associates
For a Durable repair, rehabilitation & retrofitting of damaged buildings & structures use RESIKON 400 with cement mortar and concrete.
RESIKON 400
RESIKON 400, UV resistant modified acrylic polymer emulsion for repairing, retrofitting and rehabilitation of damaged buildings and structures. It is an excellent bonding agent for old and new concrete and plaster. It also reduces water absorption, chloride ingress and improves flexural strength.
REŠIKON® 400
CONSTRUCTION CHEMICAL SYSTEMS
modified pure acylic polymer emulsion
ANUVI
Manufactured & Marketed by
ANUVI CHEMICALS PRIVATE LTD.
212, "Godavan", Laxmi Industrial Premises, Pokhran Road No.1, Vartak Nagar, Thane (W) 400 606, Maharashtra. INDIA
Tel.: 91-22-2585 5400 • TeleFax : 91-22-2585 5714 • Email:anuvi@vsnl.com • Website:www.anuvichemicals.com/www.resikon.net
Polymer chemistry for your success . . . from Anuvi

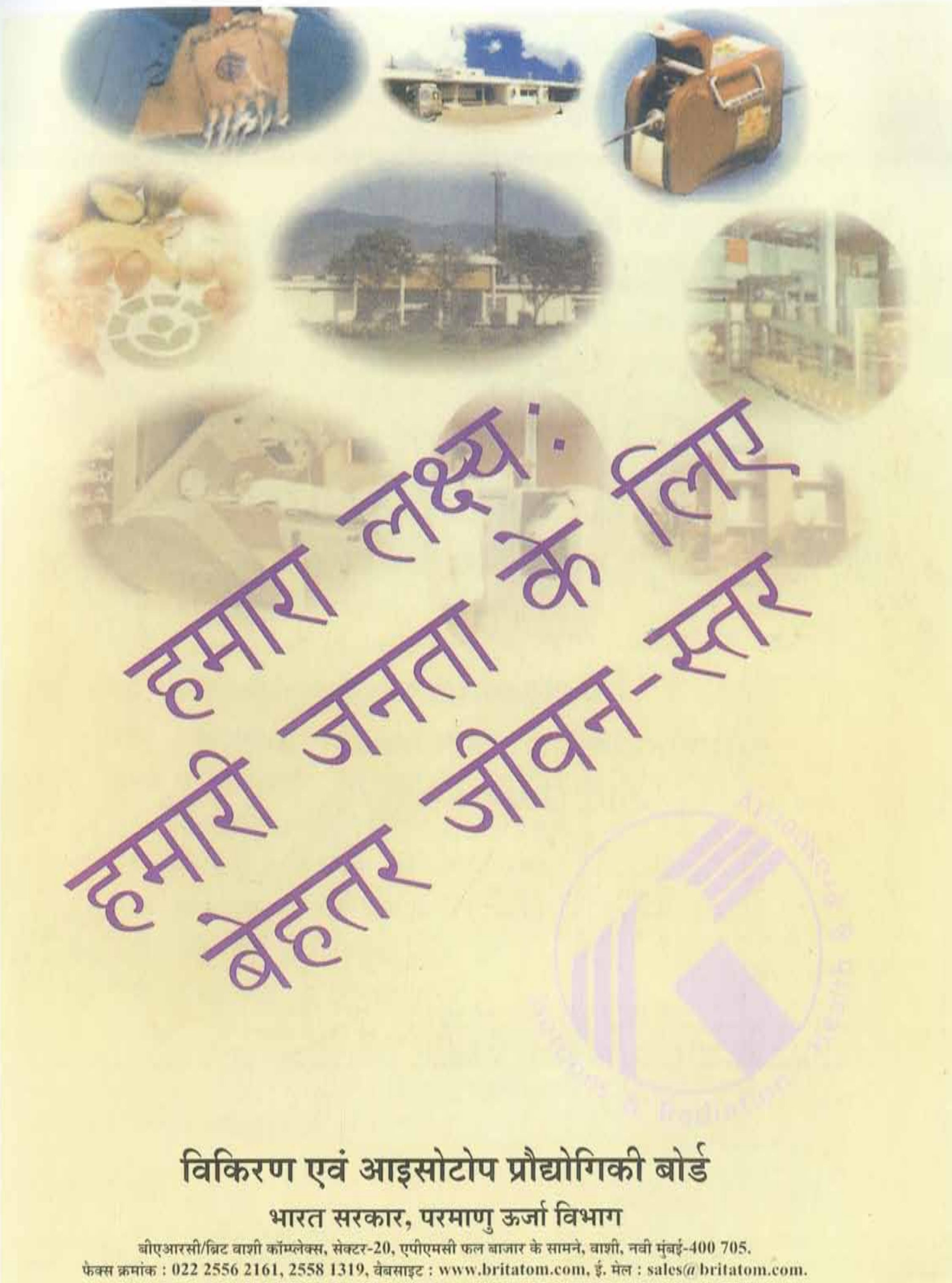
हमारा लक्ष्य :
हमारी जनता के लिए
बेहतर जीवन-स्तर
विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड
भारत सरकार, परमाणु ऊर्जा विभाग
बीएआरसी/ब्रिट वाशी कॉम्प्लेक्स, सेक्टर-20, एपीएमसी फल बाजार के सामने, वाशी, नवी मुंबई-400 705.
फेक्स क्रमांक : 022 2556 2161, 2558 1319, वेबसाइट : www.britatom.com, ई. मेल : sales@britatom.com.

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या : ३५७६४/७९

WITH BEST COMPLIMENTS

FROM

इंडियन रेअर अर्थ्स लिमिटेड

(भारत सरकार का उपक्रम)

A MULTILOCATIONAL COMPANY MANUFACTURING & EXPORTING BEACH SAND MINERALS AND RARE EARTH COMPOUNDS

MINERALS DIVISION
CHAVARA, KERALA

MINERALS DIVISION
MANAVALAKURICHI,

OSCOM
CHATRAPUR, ORISSA

R E DIVISION
ALUA, KERALA

PRODUCT RANGE

MINERALS	RARE EARTH COMPOUNDS
ILMENITE – 'Q', 'MK' & 'OR' GRADE	RARE EARTHS CHLORIDE
RUTILE – 'Q', 'MK' & 'OR' GRADE	RARE EARTHS FLUORIDE
ZIRCON – 'Q', 'MK' & 'OR' GRADE	CERIUM OXIDE
SILLIMANITE – 'Q' & 'OR' GRADE	CERIUM HYDRATE (WET)
GARNET – 'MK' & 'OR' GRADE	CERIUM HYDRATE (DRY)
ZIRCON FLOUR	NEODYMIUM OXIDE
MONAZITE	DIDYMIUM CARBONATE (DRY)

THORIUM NITRATE AND THORIUM OXIDE

इं
रे
अ

व्यापार संबंधी जानकारी हेतु संपर्क करें :
निदेशक (विपणन)
इंडियन रेअर अर्थ्स लिमिटेड
प्लॉट नं. १२०७, वीर सावरकर मार्ग
सिद्धि विनायक मंदिर के सामने, मुंबई-४०० ०२८

Ph No.: +91 22 2430 1755 (Direct)
+91 22 2421 1630/ 1851/
2438 2042 (Epabx)
Fax No: +91 22 2422 0236
E-mail : vkverma1@vsnl.com

मंजुश्री द्वारा संपादित व **आर्ट होम**, शांताराम साळुंके मार्ग, घोड़पदेव, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.
टाइप सेटर्स : **वन-अप प्रिंटर्स**, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फो. : २५२१ ६२८४.